

## ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक  
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब  
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा  
पोस्ट—महोबाजार  
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक  
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक  
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक  
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक  
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर  
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क—40.00  
एक प्रति—12.50  
आजीवन सदस्यता शुल्क  
800.00

### विषय-सूची

कविता	लेखक	पृष्ठ
भक्ति सब कोई करै	सद्गुरु कबीर	1
शत कोटि तुम्हारा अभिनन्दन	श्री जीवछ झा	
गुरु वंदनाज्ञानदास		38
अँधियारों से क्यों घबराये?	डॉ. अमृत सिंह	
जब तक जीवन है	श्रीमती मीना जैन	41
<b>स्तंभ</b>		
पारख प्रकाश / 2	व्यवहार वीथी / 16	परमार्थ पथ / 25
बीजक चिंतन / 35	शंका समाधान / 39	
<b>लेख</b>		
हर पल को सुन्दर बनाये	श्रीमती सुमन सिंह	6
दो रास्ते	गुरुभूषण दास	7
सच और सच का व्यवहार	श्री धर्मदास	11
एक अखंड नियम जो सर्वत्र है	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	19
संतुलन है जिंदगी	साध्वी समीक्षा	21
मेरे साथ ऐसा नहीं होगा, लेकिन क्यों?	श्री सीताराम गुप्ता	27
लाओत्जे क्या कहते हैं?		28
अपना भविष्य स्वयं संवारे	ब्रह्मचारी भूपेन्द्र	30
'लेना' ही, मानव की भूख क्यों?	श्री ललित गर्ग	37
निर्ग्रन्थ मन-सुखद जीवन	गुरुरमन दास	42
मन शीतल कैसे हो?		44

#### नया प्रकाशन

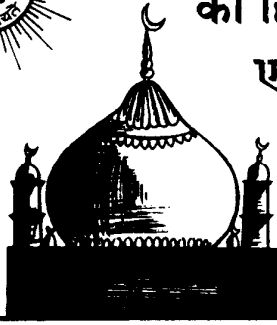
1. पलटू साहेब की बानी ( टीकाकार-सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी )—श्री पलटू साहेब सद्गुरु कबीर साहेब द्वारा प्रवर्तित संत परंपरा की एक महान विभूति हैं। आपकी वाणी अत्यंत ओजस्वी, तार्किक एवं सारगर्भित है। भ्रम-कल्पना, अंधविश्वास एवं चमत्कारों से रहित सत्य का दिग्दर्शन, स्वस्वरूप की परख, मन-माया से सावधानी, विषय-वासना का निरसन, वैराग्य की प्रेरणा पदे-पदे है। सभी शांति-इच्छुकों के लिए अत्यंत प्रेरणाप्रद ग्रंथ, पहली बार टीका सहित। पृष्ठ 496, मूल्य 175 रुपये।



सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,  
एक जिमी पर रहिये

—सन्त कबीर



# पारख प्रकाश

पारख बिन परचै नहीं, बिन सत्संग न जान ।  
दुबिधा तजि निर्भय रहे, सोई सन्त सुजान ] बीजक, पाठफल]

वर्ष 43]

इलाहाबाद, पौष, वि० सं० 2070, जनवरी 2014, सत्कबीराब्द 615

[अंक 3

भक्ति सब कोई करे भरमना ना टरे, भरम जंजाल दुख द्वन्द्व भारी ।  
काल के जाल में जक्त सब फँसि रहा, आस की डोरि जम देत डारी ]  
ज्ञान सूझै नहीं सब्द बूझै नहीं, सरन ओटा नहीं गर्ब धारी ।  
ब्रह्म चीन्हें नहीं भर्म पूजत फिरै, हिये के नैन क्यो फोरि डारी ]  
काटि सर जीव धरि थाप निरजीव को, जीव के हतन अपराध भारी ।  
जीव का दर्द बेदर्द कसकै नहीं, जीभ के स्वाद नित जीव मारी ]  
एक पग ठाढ़ कर जोर बिनती करे, रच्छ बल जाऊँ सरना तिहारी ।  
वहाँ कछु है नहीं अरज अंधा करे, कठिन डंडौत नहिं टरत टारी ]  
यही अकर्म से नर्क पापी पड़े, करम चंडाल की राह न्यारी ।  
धन्य सौभाग जिन साध संगत करी, ज्ञान की दृष्टि लीजै बिचारी ]  
सत्त दावा गहौ आपु निर्भय रहो, आपु को चीन्हि लखु नाम सारी ।  
कहैं कबीर तू सत्त पर नजर कर, बोलता ब्रह्म सब घट उजारी ]

## आपा मिटाया आप का

जैनों के आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के 100 पुत्र थे। सभी पुत्रों को राज्य बांटकर वे विरक्त हो गये। कुछ दिनों के बाद बड़े पुत्र भरत के मन में चक्रवर्ती होने की भावना जाग्रत हुई। उन्होंने अपने सभी भाइयों के पास संदेश भेजा कि तुम सब मेरी अधीनता स्वीकार करो। अन्य सभी भाई तो उनकी अधीनता स्वीकार कर राज्य उन्हें सौंपकर विरक्त होकर पिता ऋषभदेव के पास चले गये, किंतु बाहुबली ने अधीनता स्वीकार नहीं की। उन्होंने कहा कि बड़े भाई चक्रवर्ती होना चाहते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किंतु मैं उनकी अधीनता स्वीकार नहीं कर सकता। हां, यदि वे मुझसे राज्य मांगें तो मैं राज्य दे सकता हूं। फलतः दोनों के बीच युद्ध की घोषणा हो गयी। दोनों की सेना आमने-सामने खड़ी हो गयीं। दोनों के मंत्रियों एवं सेनापतियों ने कहा—राजन! लड़ाई आप दोनों भाइयों के बीच है। इसमें व्यर्थ हिंसा-हत्या और निरपराध लोगों के खून बहाने की क्या आवश्यकता! आप दोनों द्वन्द्व युद्ध करके हार-जीत का फैसला कर लें। बात दोनों की समझ में आयी और दोनों में द्वन्द्व युद्ध शुरू हो गया। इसमें भरत ने अनीति से काम लिया, जिससे बाहुबली दुखी होकर राज्य त्यागकर विरक्त हो गये। सोचा कि पिता के पास उनकी शरण में चला जाऊं और वहां रहकर साधना करूं, तब उन्हें ख्याल आया कि मुझसे पहले मुझसे छोटे 98 भाई पिता जी के पास जाकर साधु हो गये हैं, वहां जाने पर उन सबको बड़ा मानकर मुझे उनको प्रणाम करना पड़ेगा और यह मैं कैसे कर सकता हूं। साधना ही करना है तो कहीं भी रहकर किया जा सकता है।

वे अपने बड़े होने के अहंकारवश ऋषभदेव के पास न जाकर अकेले जंगल में जाकर कठोर तप-साधना करने लगे। 12 वर्ष तक तप-साधना के बाद

भी उन्हें शांति नहीं मिली। उनकी स्थिति जानकर उनकी दो बहनें वहां गयीं और उन्हें संबोधित कर कहने लगीं—भैया! हाथी से नीचे उतरो। उनकी आवाज सुनकर बाहुबली को धक्का लगा। उन्होंने कहा कि मैं हाथी पर कहां बैठा हूं। मैं तो तप-साधना कर रहा हूं। बहनों ने कहा—भैया! अभी आप अहंकार के हाथी पर सवार हैं। जब तक इससे नीचे नहीं उतरोगे, शांति नहीं मिल सकती। बाहुबली को अपनी भूल समझ में आयी और अपना बड़ा होने का अहंकार छोड़कर जैसे ही उन्होंने ऋषभदेव के पास जाने के लिए कदम उठाया वैसे ही उन्हें शांति मिल गयी।

क्या कारण है कि सामान्य लोग ही नहीं अपितु कितने बड़े-बड़े पूज्य-प्रतिष्ठित ज्ञानी-प्रवक्ता, साधु-महात्मा, त्यागी-तपस्वी, विरक्त-संन्यासी कहलाने वाले भी मानसिक अशांति से पीड़ित हैं। प्रेम, एकता, समता का पाठ पढ़ाने वाले एक दूसरे से मिलने को तैयार नहीं, मिल भी जायें तो झुकने को तैयार नहीं। इसमें दूसरा और कोई कारण नहीं है। एक ही कारण है—अहंकार। दुनिया को झूठा, क्षणभंगुर, नाशवान कहने वाले कितने साधु-महात्मा, त्यागी-वैरागी-संन्यासी अपने-अपने मठ-मंदिर-आश्रम, पद-प्रतिष्ठा को सत्य और शाश्वत मानकर उनके अहंकार में इतना डूबे रहते हैं कि न तो वे किसी को नमस्कार कर सकते हैं, न किसी से नीचे और पीछे बैठ सकते हैं। वे यह भूल गये कि यदि दुनिया झूठी और क्षणभंगुर है तो दुनिया के अंदर रहने के कारण उनका मठ-मंदिर-आश्रम, पद-प्रतिष्ठा, नाम-रूप, शिष्य-शाखा भी झूठे एवं नाशवान हैं। इनमें से कुछ भी स्थिर और शाश्वत रहने वाला नहीं है फिर किसका अहंकार। त्याग-तप, साधना-भक्ति विनम्रता का पथ है, अहंकार का नहीं। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—हरुये हरुये तर गये, बूड़ा जिन सिर भार। तथा—तरने को है दीनता, डूबन को अभिमान।

अनेक ऐसे साधु-महात्मा हैं जो मंच पर पहुंचते हैं या कहीं जाते हैं तब अपने लिए विशेष प्रकार का स्वागत-सत्कार चाहते हैं। कितने तो मंच पर चांदी का सिंहासन लगवाकर ही बैठते हैं। कितने तो अपने साथ

दो-चार बंदूकधारी अंगरक्षक लेकर चलने में अपना शान समझते हैं तो कितने दस-बीस लोगों के घेरे में रहकर चलने में। इन्हें देखकर ऐसा लगता है कि ये संत-महात्मा न होकर कोई राजनेता हैं। यह सब अहंकार का प्रदर्शन नहीं तो क्या है! दैहिक नाम-रूप के प्रति जितनी गहरी आसक्ति एवं तादात्म्यता होगी उतना ज्यादा प्रदर्शन होगा। यह भूल ही गये कि दैहिक नाम-रूप एवं संसार के प्रति आसक्ति ही भवरोग है तथा दुख एवं बंधन का कारण है। और इनसे मुक्ति पाने के लिए ही त्याग-वैराग्य मार्ग में आये हैं।

भक्ति का अर्थ है—इष्ट के प्रति अनुराग, श्रद्धा, विनम्रता, समर्पण। भक्ति और अहंकार साथ-साथ नहीं रह सकते, किंतु आज भक्ति के क्षेत्र में अहंकार का ही बोलबाला दिखाई पड़ रहा है। मंदिरों में मूर्ति चाहे किसी महापुरुष की हो, वह तो एक प्रतीक है। उसे देखकर उस महापुरुष की याद आती है। भक्त को उसकी पूजा करके प्रसन्नता होती है और मन में सात्विक भावना आती है। किंतु आज मंदिर पूजा-स्थल कम प्रदर्शन स्थल ज्यादा बनते जा रहे हैं। आज जिस प्रकार मूर्तियों को चांदी-सोना और हीरा के आभूषणों से लादा जा रहा है, सोने की मूर्तियां बनायी जा रही हैं या उनके लिए सोने के सिंहासन बनाये जा रहे हैं, नाना प्रकार के चमकीले-भड़कीले कपड़ों से मूर्तियों का श्रृंगार किया जा रहा है तथा मंदिरों के चारों तरफ जिस प्रकार सजावट किया जा रहा है, उसमें भक्ति-भावना कम अहंकार का प्रदर्शन ज्यादा है। मंदिरों के व्यवस्थापकों में होड़ लगी है कि कैसे ज्यादा से ज्यादा भक्तों-श्रद्धालुओं को अपने मंदिर में आकर्षित किया जाये और इसके लिए वे ताम-झाम, प्रदर्शन का सहारा ले रहे हैं। कहा जाता है कि भगवान धन का नहीं भाव का भूखा है। तब भक्ति और भगवान के नाम पर इतना ज्यादा प्रदर्शन क्यों! ऐसा नहीं है कि चांदी-सोना-हीरा से बनी मूर्ति को देखकर भक्तों के मन में ज्यादा श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होगी और पत्थर से बनी मूर्ति को देखकर कम। इसमें दोष न भक्तों का है और न भगवान का, दोष तो है भक्ति के नाम पर अहंकार का पोषण करने वालों का।

ऐसे प्रदर्शन एवं दिखावा से भक्ति एवं भगवान दोनों दूर हो जाते हैं।

अकसर यह कहावत सुनने में आती है कि 'नदी एक घाट बहुतेरे'। जैसे किसी नदी को पार करने के लिए अनेक घाट होते हैं वैसे सबकी मंजिल तो एक है परंतु वहां तक पहुंचने के रास्ते अनेक हैं। दुनिया में जितने भी मत-मजहब-संप्रदाय हैं सब जीवन के अंतिम लक्ष्य तक पहुंचने के रास्ते हैं। यदि ऐसा है तब यह अहंकार क्यों कि हमारा मत-मजहब-संप्रदाय ही मोक्ष तक, खुदा-परमात्मा, परमलक्ष्य तक पहुंचने का एकमात्र रास्ता है। आज प्रायः यही देखा जा रहा है कि अधिकतम मत-मजहब-संप्रदायों के अनुयायी बड़े दावा के साथ घोषणा कर रहे हैं कि हमारा संप्रदाय ईश्वर द्वारा प्रवर्तित है, हमारे महापुरुष साक्षात् ईश्वर या ईश्वर के अवतार, पुत्र एवं पैगंबर हैं और हमारा धर्मग्रंथ ईश्वरीय वाणी, अपौरुषेय, इलहामी कलाम, स्वतः प्रमाण है, इसलिए हमारे मत-पंथ, संप्रदाय-मजहब को मानने वाले ही दीनदार-आस्तिक हैं, और वे ही स्वर्ग-मोक्ष पाने तथा ईश्वर तक पहुंचने के अधिकारी हैं। जो हमारे मत-मजहब, हमारे महापुरुष और धर्मग्रंथ पर विश्वास नहीं करते, इनको नहीं मानते वे सब नास्तिक-काफिर हैं, एतदर्थ सब नरकगामी हैं। कहना न होगा कि ऐसा दावा करना झूठा अहंकार है और अपने से भिन्न मतावलंबियों पर रोब गांठने तथा धौंस जमाने के हथकंडे हैं। स्वर्ग, मोक्ष, सत्य पर किसी का एकाधिकार नहीं है और न यह सब मरने के बाद मिलने वाले हैं। इन पर सबका समान अधिकार है और यह जीवन-जगत की चीजें हैं। जिसके मन से कटुता, कठोरता, क्रूरता, स्वार्थलिप्सा, ईर्ष्या, घृणा आदि दूर होकर उसमें प्रेम का साम्राज्य है वह आज स्वर्ग-सुख का अनुभव करता है, जिसके मन की अहंता-ममता, आसक्ति मिट गयी है और जो सबसे सर्वथा निष्काम-अनासक्त हो गया है, वह आज ही मुक्त है और जो सारे आग्रह, दुराग्रह, पूर्वग्रह त्यागकर सब तरफ से निष्पक्ष हो गया वह सत्य को पा सकता है। किन्तु इसके लिए पूर्ण विनम्रता चाहिए, न कि अहंकार। अहंकारी आदमी तो

आज ही नरक में जी रहा है, फिर मरने के बाद वह स्वर्ग कैसे पा सकता है?

आत्मशांति के लिए बाह्य त्याग का उतना महत्त्व नहीं है जितना आंतरिक त्याग का महत्त्व है और न इसका महत्त्व है कि किसने क्या-कितना-किसका त्याग किया है, किन्तु महत्त्व है कैसे त्याग किया है। कितने साधु-महात्मा इसकी डींग हांकते रहते हैं कि मैंने इसका-इसका त्याग किया है। मेरे घर में इतनी जमीन, इतनी धन-दौलत, ऐसा इतना बड़ा कारोबार, ऐसा बड़ा मेरा परिवार था, इतनी सुख-सुविधाएं थीं, किन्तु मैंने सबको त्याग दिया, सब पर लात मार दिया। खेद के साथ कहना है कि उन्होंने लात जरूर मार दी किन्तु लात अभी भी उसमें मजबूती से चिपक गयी है, छूट नहीं पा रही है, अन्यथा यह नहीं कहा जाता कि मैंने इसका-इसका त्याग कर दिया। बाहर से तो त्याग हो गया किन्तु अंदर अभी भी मजबूत पकड़ बनी हुई है। इसलिए बाहर का त्याग काम नहीं आयेगा, काम आयेगा अंदर का त्याग। बाहर की वस्तुओं का त्याग बड़ा सरल है, कठिन है अंदर का, अहंकार का त्याग। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—

*कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।*

*मान बड़ाई कामना, दुर्लभ तजना येह।*

जिस त्याग में दिखावा, प्रदर्शन, अहंकार है वह त्याग त्याग है ही नहीं, वह तो भोग का साधन है। न स्थूल प्राणी-पदार्थों का भोग तो सूक्ष्म मान-सम्मान, कीर्ति, प्रसिद्धि-प्रतिष्ठा का भोग। जब मान-सम्मान, कीर्ति-प्रसिद्धि की कामना बढ़ जाती है और पद-प्रतिष्ठा, सत्ता-संपत्ति-समृद्धि से अपने को जोड़कर बड़ा मान लिया जाता है तब ऐसे व्यक्ति को पदे-पदे अपमान का बोध होता है। उसे हर आदमी अपना शत्रु नजर आता है और वह सब पर संदेह करने लगता है। जिस शांति-सुख की प्राप्ति के लिए वह त्याग-मार्ग में आया था वह दुर्लभ हो जाता है और सब समय उसका मन अशांत बना रहता है। यदि वह अपने को किसी प्राणी-पदार्थ, पद-प्रतिष्ठा, गद्दी-महंती, पूज्यता-प्रभुता से न जोड़कर

सबका अहंकार त्यागकर विनम्र बन जाये तो आज उसका मन शांति-सागर बन जाये। सद्गुरु कबीर तो कहते हैं—या आपा को डारि दे, दया करे सब कोय। तथा 'नन्हा ह्वै के पीव' नन्हा-छोटा शिशु बनकर ही माता का दूध पीया जा सकता है, बड़ा बनकर नहीं। इसी प्रकार नन्हा-विनम्र-निष्काम बनकर ही शांति-सुख का अनुभव किया जा सकता है, बड़ा-अहंकारी बनकर नहीं।

कितने लोग कहते हैं कि हमारे गुरु इतने बड़े हैं, पहुंचे हुए सिद्ध हैं, बड़े त्यागी-वैरागी हैं, उनमें ऐसे-ऐसे सद्गुण हैं, उनके समान तपस्वी-वैराग्यवान, नियम के पक्के मिलना मुश्किल है। वे अपने गुरु की प्रशंसा के पुल बांधा करते हैं और बड़े समारोह के साथ गुरु की महिमा का बखान करते रहते हैं। उन्हें इसी का बड़ा अहंकार रहता है कि हम इतने बड़े गुरु के शिष्य हैं। परंतु ऐसे लोगों को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि उनके गुरु चाहे जितने महान क्यों न हों, उससे उन्हें कुछ भी लाभ नहीं होने वाला है। उन्हें लाभ तब होगा जब गुरु की महानता, उनका त्याग-तप, ज्ञान-वैराग्य उनके जीवन में आयेगा। गुरु की महानता, उनका त्याग-तप अपने जीवन में नहीं आया, तो बड़े गुरु के शिष्य होने का अहंकार प्रदर्शन एवं पतन का ही कारण बनेगा, कल्याण-आत्मशांति का नहीं।

जिन गुरुओं ने विरक्त-त्यागी साधुओं के लिए स्वर्ण तथा स्वर्ण-आभूषणों को पहनना तो दूर उनका स्पर्श भी निषिद्ध ठहराया, आज उन्हीं महापुरुषों के शिष्य उन्हीं की स्वर्ण या अष्ट धातुओं की बड़ी-बड़ी मूर्तियां बनवा रहे हैं और अपने गुरुओं को प्रदर्शन की वस्तु। जो महापुरुष जीवनपर्यंत प्रदर्शन, दिखावा, तड़क-भड़क से सर्वथा दूर रहे और जिनका जीवन बिल्कुल सादा, सरल, त्यागमय रहा आज उन्हीं के शिष्य-अनुयायी उन्हीं के नाम पर कैसा-कैसा प्रदर्शन कर रहे हैं, सर्वत्र देखा जा सकता है। इतना ही नहीं उन्होंने जीवनपर्यंत जिनका निषेध किया, उन्हीं के नाम पर वही सब कुछ

किया जा रहा है। उसमें भी अहंकार यह कि हम ही अपने गुरु या महापुरुष के सच्चे शिष्य-अनुयायी हैं।

हर आदमी को दुनिया में सबसे ज्यादा प्यारा यदि कुछ है तो अहंकार। वह अपने अहंकार को हर प्रकार से सुरक्षित रखना चाहता है। वह ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, दान-पुण्य, सेवा-परोपकार के भी काम करता है तो अपने अहं की पुष्टि के लिए। आदमी हर प्रकार का नुकसान सहन करने को तैयार है, परंतु अहंकार पर चोट वह बिलकुल ही सहन नहीं कर पाता। अहंकार पर चोट लगते ही वह तिलमिला जाता है। पौराणिक कहानियों में प्रायः यह जो पढ़ने-सुनने में आता है कि अमुक तपस्वी ने, अमुक मुनि ने, अमुक देवता ने अमुक-अमुक को ऐसा-ऐसा शाप दे दिया, उसमें एकमात्र कारण अहंकार पर ठेस-चोट लगना ही है, दूसरा नहीं। जितना ज्यादा त्याग-तप उतना ज्यादा अहंकार। ऋग्वेद, वाल्मीकीय रामायण तथा अन्य ग्रंथों में वसिष्ठ-विश्वामित्र की लड़ाई की जो बात आती है, जिसमें विश्वामित्र ने वसिष्ठ के आश्रम में आग लगवा दिया था और वसिष्ठ के पुत्रों को मरवा दिया था तथा वसिष्ठ ने विश्वामित्र के पुत्रों को मरवा दिया था, उसमें दोनों का अहंकार ही मुख्य कारण था, दूसरा नहीं। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि-देवता जिंदगी भर अहंकार की आग में जलते रहे तब सामान्य लोगों की तो बात ही क्या। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

*अहंकार की अग्नि में, दहत सकल संसार।*

*तेहि से बाँचे संत जन, केवल शांति आधार।*

अहंकार को सुरक्षित बनाये रखकर कोई भी मनुष्य सुख-शांतिपूर्वक जीवन जी ही नहीं सकता। यदि सुख-शांतिपूर्वक जीवन जीना है, पूर्ण आत्मशांति का अनुभव करना है तो अहंकार का त्याग करना ही होगा, इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है। क्योंकि अहंकार मिट जाने पर चोट लगने की गुंजाइश समाप्त हो जाती है। अहंकार ही वह मर्मस्थल है जहां-जिसमें आदमी को बराबर चोट लगा करती है और वह हरदम पीड़ित होता रहता है। अहंकार नहीं तो मर्मस्थल नहीं, मर्मस्थल नहीं तो चोट नहीं, चोट नहीं तो पीड़ा नहीं, पीड़ा नहीं तो

दुख नहीं, फिर तो शांति ही शांति है।

चीन के प्राचीन दार्शनिक संत लाओत्जे आंलकारिक भाषा में कहते हैं—“मैंने सुना है कि जो जीवन जीने का उत्तम ढंग जानता है, सर्वत्र भ्रमण करते हुए भी उसका गैंडा या बाघ से सामना नहीं होता। सैन्य दल के बीच से वह गुजरता है और उसके अस्त्र-शस्त्र से अपने को बचाता नहीं। गैंडा अपने सींग से उस पर कहां वार करे? बाघ अपने पंजों से उस पर कहां वार करे? अस्त्र-शस्त्र अपनी धार किसमें प्रवेश कराये? यह कैसे संभव है? क्योंकि, उसके मर्मस्थल नहीं है।”

यह ध्यान देने की बात है कि ज्ञानी जीवन्मुक्त संत के शरीर में गैंडा अपने सींग से वार कर सकता है, बाघ पंजा मार सकता है तथा अस्त्र-शस्त्र का प्रहार हो सकता है। उक्त कथन का लाक्षणिक अर्थ यह है कि जो सब कुछ का अहंकार त्यागकर पूर्ण विनम्र-निर्माण हो गया उसे कोई परास्त नहीं कर सकता। क्योंकि उसका मर्मस्थल ही नहीं है तब उस पर कोई वार कैसे कर सकता है। अहंकार ही वह मर्मस्थल है जिस पर चोट लगती है। अहंकार को बनाये रखकर, पाल-पोषकर कोई दुख-मुक्त नहीं हो सकता। पूर्ण दुख-मुक्ति का एकमात्र उपाय है अहंकार का विसर्जन।

इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

*चाखा चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।*

*एक म्यान में दो खडग, देखा सुना न कान।*

जिस प्रकार एक साथ एक म्यान में दो तलवार नहीं रखी जा सकती उसी प्रकार कोई मान-अहंकार को रखकर प्रेम-रस, शांति-रस का पान-अनुभव नहीं कर सकता। शांति-रस का अनुभव करना है, शांति-रस में छका रहना है तो अहंकार का त्याग करना ही होगा।

नारद को अपने काम-विजय का अहंकार हुआ, दुर्वासा को अपने तप-त्याग का, रावण-दुर्योधन को अपने बल और सैन्य-शक्ति का, तो इसका परिणाम केवल पतन एवं विनाश ही हुआ। अहंकार रूप-सौंदर्य, जवानी, बल-प्रभुता, शासन-स्वामित्व, पद-प्रतिष्ठा, सत्ता-संपत्ति, विद्या-बुद्धि, त्याग-तप, ज्ञान-भक्ति, गद्दी-महंती, कीर्ति-प्रसिद्धि, शिष्य-शाखा, आयु, जाति-वर्ण

किसी का क्यों न हो केवल पतन एवं दुख का ही कारण होता है। अहंकार आदमी को अंततः रुलाकर ही छोड़ता है। जिसने अपने अहंकार पर विजय पा ली, उसने मानो सबको जीत लिया। अब उसे किसी पर विजय पाने की आवश्यकता नहीं रह गयी। अहंकार खत्म तो उसके लिए दुख का संसार खत्म। इसीलिए पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी कहते हैं—आपा मिटाया आप का फिर मिट गया संसार है। जिसने अपने अहंकार को मिटा दिया, उसके लिए कोई दुख रह नहीं गया। बाहर का संसार तो सब समय बना ही रहेगा, क्योंकि वह अनादि-अनंत है। उसके बने रहने में हमारी कोई हानि नहीं है। हमारी हानि तो है अंदर अहंता-ममता का संसार बने रहने में। हमें विवेक-विचार, संयम-साधना द्वारा इसी को ही मिटाना है। जब शरीर ही नित्य रहने वाला नहीं है, आजकल में इसे सदा के लिए सर्वथा समाप्त हो जाना है तब और क्या साथ रहने वाला है, जिसका अहंकार किया जाये। इसलिए सारा अहंकार छोड़कर शरीर संबंध से जो कुछ प्राप्त है शरीर रहते तक विनम्रतापूर्वक बाहर उसका स्व-पर कल्याण में सदुपयोग करते रहें और अंदर से पूर्ण निष्काम-निर्मान बन जायें, फिर सब समय, सब तरफ विजय ही विजय है, शांति एवं प्रसन्नता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

*समुझि बूझि जड़ हो रहै, बल तजि निर्बल होय।  
कहहिं कबीर ता सन्त का, पला न पकरै कोय।*

जो सत्य-तथ्य को भलीभांति समझकर भोलाभाला बन जाता है और सारे बल-अहंकार को छोड़कर निर्बल-निरहंकार-निर्मान हो जाता है, ऐसे विवेकवान संत का कोई पल्ला नहीं पकड़ सकता, उसे कोई परास्त-दुखी नहीं कर सकता।

निर्मानि-विनम्र हारकर भी जीत जाता है और अहंकारी जीतकर भी हार जाता है। निर्मानता-विनम्रता ही शांति-सुख-स्वर्ग का रास्ता है और अहंकार अशांति-दुख-नरक का। सद्गुरु का कथन है—हारा सो हरि को मिले, जीता जमपुर जाये।

—धर्मेन्द्र दास

## हर पल को सुन्दर बनायें

लेखक—श्रीमती सुमन सिंह

एक इंजीनियर अपने काम से सेवानिवृत्त होना चाहता था। उसने अपने मालिक से कहा, अब मैं घर बनाने का काम बन्द करके पत्नी और परिवार के साथ कुछ समय बिताना चाहता हूँ।

मालिक को यह सुनकर अच्छा न लगा। इतना अच्छा कर्मचारी वह खोना नहीं चाहता था, पर वह कर भी क्या सकता था। उसने इंजीनियर से पूछा कि क्या वह आखिरी बार एक मकान बनाएगा? मालिक होने के नाते तो वह इंजीनियर से इतना कह ही सकता था। इंजीनियर भी मकान बनाने के लिए मान गया।

इंजीनियर ने काम तो ले लिया था, पर उसका मन अब काम करने के मूड में नहीं था। मकान बनाने में उसका मन नहीं लग रहा था। फलस्वरूप उसने एक बहुत ही बेकार मकान का ढांचा तैयार किया। जब उसने अपना काम खत्म कर लिया, तब मालिक मकान देखने आया। उसने मकान की चाबी इंजीनियर के हाथ में थमाते हुए कहा—“यह तुम्हारा घर है। मेरी तरफ से तुम्हारे लिए उपहार।”

हैरान इंजीनियर मालिक का मुंह देखने लगा। कितना बुरा हुआ। अगर उसे जरा भी पता होता कि वह अपना घर बना रहा है तो इतनी लापरवाही नहीं बरती होती।

ऐसा ही हमारे साथ होता है। हम अपनी जिंदगी जीते हैं, उसे संवारते हैं, पर उसे सबसे अच्छा नहीं बना पाते। और जब हमें इस बात का एहसास होता है, तब बहुत देर हो चुकी होती है। हम यह सोचते हैं कि काश! हमें एक मौका और मिल जाता। पर वापस जाना आसान नहीं होता। किसी ने ठीक ही कहा है—“हम अपनी जिन्दगी खुद बनाते हैं।”

हमारा व्यवहार और सही रास्ता चुनने का साहस ही हमें हमारी जिन्दगी बनाने में मदद करता है, इसलिए समझदारी यही है कि हर पल को सुन्दर बनायें।

## दो रास्ते

लेखक—गुरुभूषण दास

एक युवक कहीं जा रहा था, आगे देखा कि सड़क दो भागों में बंटा हुआ है। बायीं तरफ जाने वाली सड़क बिलकुल साफ-सुथरी, सुन्दर एवं चिकनी। सड़क के दोनों ओर सुन्दर सुगन्धित फूल। नवयुवतियां खड़ी हैं स्वागत में। कर्णप्रिय संगीत की मधुर आवाज आ रही है। युवक आकर्षित हुआ। मुग्ध मन ने कदम आगे बढ़ाने को कहा, तभी वह आगे देखता है, एक सुन्दर-सा साइन बोर्ड, लिखा है—‘यह रास्ता सर्वनाश की ओर ले जाने वाला है।’ ठिठका और दायीं तरफ जाने वाली सड़क को देखा। उबड़-खाबड़, धूल-धूसरित, कहीं गड़ढे तो कहीं उभरे हुए नुकीले पत्थर और यत्र-तत्र कंटीली झाड़ियां। युवक का मन घबराया। लेकिन तभी आगे एक धुंधला-सा बोर्ड देखा जिसमें लिखा है—‘यह रास्ता परम आनंद को जाता है।’ आपके मन में सहज जिज्ञासा होगी, आखिर युवक किस रास्ते में गया! छोड़िये उसकी बात, हम अपनी बात करते हैं। जरा कल्पना करिये, युवक की जगह आप हैं; बताइये आप किस रास्ते में जायेंगे?

आप चुप्पी क्यों साध लिये? ‘राइट चलोगे या लेफ्ट, जल्दी कर लो सलेक्ट!’ मैं आपको उत्तर के लिए विवश नहीं कर सकता। चुनाव करने में आप स्वतंत्र हैं। हां, इतना अवश्य कहना है, प्रत्येक चुनाव के साथ एक परिणाम जुड़ा रहता है। परिणाम मिलने पर हम चाहे जितना तर्क दें, शिकायत करें, नाराज हों, उसे बदल नहीं सकते। परिणाम हमारा ही चुनाव माना जायेगा। परिणाम कभी हमारे पसंद-नापसंद का मोहताज नहीं होता। कार्य का परिणाम प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित होता है। ‘जब हम छड़ी का एक सिरा उठाते हैं, तो हम दूसरा सिरा भी उठाते हैं।’ दूसरे शब्दों में, यदि हम चुनने की छड़ी के एक कोने में पसंद को रखेंगे तो उसके दूसरे छोर पर उस पसंद के परिणाम होंगे जिन्हें हम अपने आप पसंद कर लेते हैं। एक

विदेशी विचारक गॅरी रायन ब्लेयर ने कहा है, ‘चुनी गई हर बात का एक परिणाम होता है। वह चाहे अच्छा हो या बुरा, वह पहले की गई क्रिया का परिणाम होता है और उससे बचना भी सम्भव नहीं होता। इसका अपवाद भी नहीं मिलता। यदि आप स्वीकार कर सकें कि गलत पसन्दगी में स्वयं को दण्ड देने के बीज छिपे रहते हैं, तो इस सच को भी क्यों नहीं मान लेते कि अच्छी बात को चुनने से हमें मनमाफिक फल भोगने को मिलते हैं?’ अपने परिणामों की जिम्मेदारी खुद लें।

इस विषय पर आगे चर्चा करें इससे पहले यह जान लें, क्या हैं ये दो रास्ते! दो रास्ते का बहुत व्यापक अर्थ है—राग-विराग, असंयम-संयम, भोग-योग, बंधन-मोक्ष, कुपथ-सुपथ, बेइमानी-ईमानदारी, विफलता-सफलता, घृणा-प्रेम, क्रोध-करुणा, हिंसा-अहिंसा इत्यादि। कठोपनिषद् में यम और नचिकेता का संवाद है। वहां दो मार्ग की चर्चा है—प्रेय और श्रेय। प्रेय और श्रेय मार्ग उपर्युक्त सभी रास्तों के ही पर्याय हैं। श्रेय मार्ग—श्रेष्ठ मार्ग, कल्याण मार्ग अर्थात् वह मार्ग जो शुरुआती दिनों में कठिन, निरस एवं मन-इंद्रियों को अप्रिय लगे, लेकिन परिणाम—चिरशांति। प्रेय मार्ग—सरल, सरस एवं मन-इंद्रियों को प्रिय लगने वाला मार्ग, भोग-विलास का मार्ग। परिणाम अशांति, दुख एवं पछतावा। किसी ने कहा है, ‘ईसान के पास या तो अनुशासन होता है, या फिर अफसोस! अफसोस के भारी भावनात्मक दर्द की तुलना में अनुशासन बहुत हल्का है।’ यदि हम अपना भविष्य सुखद एवं समृद्ध बनाना चाहते हैं तो वर्तमान में संयम और अनुशासन का जीवन जीना पड़ेगा। यदि वर्तमान में असंयमित और स्वच्छन्द होकर भोगों में उलझते हैं तो स्वतः ही हमारा दुखद भविष्य निर्मित हो जायेगा। हमारा भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि हम कौन-सा विकल्प चुनते हैं—वर्तमान क्षणिक आनंद का या भावी दीर्घकालीन



सुख का। अतः सदैव अंत को, परिणाम को ध्यान में रखकर चुनाव करें। यह सही और गलत में से किसी एक को चुनने के लिए हमें दिशा दिखाती है।

सफलता और विफलता या योग और भोग दो ही रास्ते हैं। बीच का कोई रास्ता नहीं है। कहीं जाते हैं, कोई कार्य करते हैं या कहीं नहीं जाते और कुछ नहीं करते, हर स्थिति में हम अपना हित या अहित कर रहे होते हैं। प्रतिक्षण हम कुछ न कुछ बन रहे हैं— बेहतर या बदतर। दूसरे शब्दों में हर विचार, शब्द और क्रिया के साथ-साथ हम या तो कुछ बना रहे होते हैं अथवा कुछ नष्ट करते हैं। क्योंकि हम स्थिर या उदासीन नहीं रह सकते, अतः कोई बीच की स्थिति नहीं होती। किसी परीक्षा में बैठते हैं, तो परिणाम आयेगा—पास या फेल। यदि परीक्षा नहीं दिलाते हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं कि हम सफल हो जायेंगे। नहीं, बल्कि ज्यादा घाटे में रहेंगे।

एक बार पशुओं और पक्षियों के बीच युद्ध हुआ। चमगादड़ सोच रहा था मैं किस पक्ष में जाऊँ! तभी देखता है, पशुओं की जीत हो रही है। वह शीघ्र पशुओं के दल में शामिल होने चला गया और कहा—‘मैं भी आप सबकी तरह ही पशु हूँ। हमारे कुल में आप सरीखे बच्चा पैदा किया जाता है और स्तनपान कराया जाता है। अतः मैं आप सबकी ओर से लड़ाई लड़ूँगा।’ जल्द ही अचानक बाजी पलटने लगी, क्योंकि पक्षियों का राजा गरुड़ आ गया और पशुओं के छक्के छुड़ा दिये। चमगादड़ ने सोचा बड़ी भूल हो गई। तत्काल विचार बदला और पक्षियों के दल में जाकर कहने लगा—‘भाइयो! मैं तो आप सबकी तरह ही आकाश में उड़ने वाला प्राणी हूँ। मैं आप सबों की ओर से लड़ाई लड़ूँगा।’ पक्षियों को पता चल गया था उसकी गद्दारी और चालाकी का। मार-पीट कर उसे भगा दिये। अब वह न पशुओं के दल में जा सकता है न पक्षियों के दल में रह सकता है। बेचारा चमगादड़ इतना दुखी और अपमानित हुआ कि आज भी दिन के उजियाले में मुंह ढांपकर छिपा रहता है, बाहर नहीं निकलता।

इंग्लैंड के पूर्व प्रधानमंत्री मार्गेट थैचर ने कहा है— ‘एक सड़क के बीचोंबीच खड़े होना बहुत खतरनाक है, क्योंकि उस व्यक्ति को दोनों तरफ से आने वाला ट्रैफिक कुचल सकता है।’ अर्थात् आप गलत पक्ष के साथ-साथ सही पक्ष का भी साथ नहीं देते हैं और अपने आप को निष्पक्ष समझते हैं तो यह आपकी गलतफहमी है। क्योंकि सही पक्ष का भी साथ न देकर आप दोनों पक्षों के विरोध पात्र बन गये हैं।

मैं जानता हूँ अभी भी आपके मन में तटस्थता का प्रलोभन है। संभवतः सद्गुरु कबीर की यह सूक्ति याद कर रहे हों—‘न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर।’ मेरे प्रिय आत्मन! आपकी सोच सही है। लेकिन सद्गुरु की यह सूक्ति अंतिम स्थिति की बात है। मंजिल में पहुंचने के बाद महान आत्माओं का यह सहज उद्गार है। पूर्ण पुरुषों का यह स्वाभाविक अनुभव है। वे गंतव्य में पहुंच गये हैं, अब उन्हें रास्ता नहीं चलना है। हमें तो अपने लिए सोचना है। हम अभी चार कदम योग-पथ में चलते हैं, तो आठ कदम भोग-पथ में चलते हैं। आगे-पीछे, आगे-पीछे हो रहे हैं। आपाततः देखने में आता है, हम बहुत सक्रिय हैं, गतिमान हैं। लेकिन गति और प्रगति को न मिलाएं। एक हिलनेवाला (लकड़ी का) घोड़ा हिलता रहता है, पर कभी आगे नहीं बढ़ता है। अमेरिका के प्रसिद्ध प्रेरक वक्ता और लेखक जिग जिगलर ने कहा है, ‘हमने गतिविधि में कार्य सम्पन्नता का भ्रम पाल लिया है।’ एतदर्थ क्या यह सच नहीं है कि अभी हमने प्रथम कदम भी नहीं बढ़ाया है! अभी भोगों का प्रलोभन मन से कहां हटा है। साधना-मार्ग में कदम बढ़ा तो दिये, लेकिन साधना पथ की विकटता को सोचकर मन चकनाचूर हो रहा है। बार-बार भोगों का चिंतन और साधनापथ में चलने का पछतावा हो रहा है। क्षमा करें, मैं किसी के घाव में नमक नहीं छिड़कना चाहता। हम स्वयं आत्मनिरीक्षण करें, अपनी मनःस्थिति को परखें। कहां हैं! कहां जा रहे हैं! बड़ी डगमगाहट है, बड़ी दुविधा है। चल रहे हैं, लेकिन परिणाम आ रहा है, न चलने का। कहीं हम उल्टा चलते हुए भी मंजिल पहुंचने का भ्रम तो नहीं पाल लिये हैं!

पत्नी ने गाड़ी चलाते हुए पति से कहा—‘देखो जी! लगता है हम गलत दिशा की ओर जा रहे हैं। पति ने सांत्वना देते हुए कहा—‘चिंता मत करो प्रिये! हम बिफोर हैं और तेजी से आगे बढ़ रहे हैं।’

मुझे आप गलत न समझें! मैं जानता हूँ, आपका मन पवित्र है, निर्विकार है। इसलिए मैं आपका वन्दन करता हूँ। यदि आप राग-द्वेष से ऊपर उठकर पूर्ण तृप्त एवं आत्मस्थ हो गये हैं, तो आपका चरण वन्दन करता हूँ। आपकी उपस्थिति मात्र जगत के लिए कल्याणकर है। हां, और यदि ऐसा नहीं है तो भी घबराने की आवश्यकता नहीं है। अफसोस न करें, दुखी न हों। यदि आप एक खुशनुमा जीवन चाहते हैं तो आपको अपने विचार खुशनुमा बनाना चाहिए। यह न सोचें कि आपने जीवन में क्या कर डाला या क्या नहीं कर पाया? पछताना छोड़ दें। क्या किया यह न सोचें, अब आगे क्या करना है यह सोचें। आप जैसे हैं उसके बजाय आप जैसा बनना चाहते हैं, इस बारे में सोचें। किसी विचारक ने कहा है, ‘हममें से कोई भी अपने अतीत को नहीं बदल सकता है, परंतु हम सभी अपने भविष्य को बदल सकते हैं।’ अतीत आपका भविष्य निर्माता नहीं, वर्तमान भविष्य बनाता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप कहां से आ रहे हैं, असल फर्क तो इससे पड़ता है कि आप जा कहां रहे हैं! एक आदमी सज्जनगढ़ से आ रहा है और दुर्जनगढ़ जा रहा है। दूसरा आदमी दुर्जनगढ़ से आ रहा है और सज्जनगढ़ जा रहा है। श्रेष्ठ कौन? आप कहां जाने की सोच रहे हैं? यह निर्णय आपके अलावा कोई दूसरा नहीं कर सकता। आपका चुनाव और निर्णय आपके जीवन में फर्क लायेगा। इसलिए आप अपना लक्ष्य निर्धारित करिये, उसे हासिल करने के लिए योजना बनाइये और अपनी योजना पर रोज मेहनत करिये। योजना वह ट्रैक है जिस पर आप रोज दौड़ सकते हैं।

हम जहां हैं वहां से, जहां पहुंचना चाहते हैं वहां तक कैसे पहुंचते हैं? कदमों से। ‘चले पांव तो पहुंचे गांव।’ यदि आपने साधनापथ में, सफलता के पथ में न

चलने का ही संकल्प ले लिया है तो आपको दुनिया की महाशक्ति भी आगे नहीं बढ़ा सकती। लेकिन आप साधनापथ में, सफलता के पथ में चलने का दृढ़ संकल्प लेते हैं, तो आपको कोई भी महाशक्ति रोक नहीं पायेगी। समस्या भी सीढ़ी बन जायेगी। कहा है—

*कर्मबीर के आगे पथ का हर पत्थर साधन बनता है।  
दिवारें भी दिशा बतातीं मानव जब आगे बढ़ता है।*

*आज तू दौरे-मुसीबत से गुजर जा ऐ दोस्त।  
कल ये मुसीबत ही तेरे ऐश का सामां होगी।*

आपके और जहां पहुंचना चाहते हैं उसके बीच सिर्फ समय और प्रयत्न आते हैं। सफल होने के लिए सही समय पर सही प्रयत्न करना होगा। हम सफलता चाहते हैं, समृद्धि चाहते हैं, दुख से छुटकारा चाहते हैं, सुख-शांति का जीवन जीना चाहते हैं। कैसे? बिना प्रयत्न के या बहुत कम प्रयत्न के। लोग असफल क्यों होते हैं? मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है न्यूनतम प्रतिरोध के मार्ग में चलने की। तात्कालिक संतुष्टि की ओर कदम बढ़ाना और दीर्घकालीन परिणामों की जरा भी चिंता न करना या बहुत कम चिंता करना। यही कारण है अधिकतर लोग मजेदार, आसान और आरामदेह काम करना चाहते हैं। आप ऐसा न करें। यदि आप सफल होना चाहते हैं, तो कष्टप्रद परिस्थितियों के लिए तैयार रहें। सफलता की राह अक्सर विपत्तियों के बीच से होकर गुजरती है। यदि आप अपनी मंजिल हासिल करना चाहते हैं, और सचमुच चाहते हैं, तो पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी के दो सूत्र अपने जीवन में लागू कर लीजिए। पहला—रुके न, दूसरा—लौटे न।

आपकी गति धीमी है। कोई बात नहीं। शर्त है, रुकें न। निरंतरता ही सफलता की कुंजी है। कछुआ धीरे-धीरे चलता है और खरगोश तेज दौड़ता है फिर भी पराजित। क्यों? निरन्तरता की कमी रही। ‘लक्ष्य तक पहुंचे बिना, ऐ पथिक विश्राम कैसा!’ मंजिल पर पहुंचकर ही दम लेने की प्रेरणा डाक-टिकट से लें।

किसी विद्वान ने कहा है, 'डाक-टिकट को देखो, इसकी उपयोगिता को समझो, यह तब तक उस चीज से चिपकी रहती है, जब तक कि अपनी मंजिल तक पहुंच नहीं जाती।' निम्नांकित पंक्तियां भी प्रेरणाप्रद हैं—

चले चलो कि चलना ही दलीले कामरानी है।  
जो थककर बैठ जाते हैं वो मंजिल पा नहीं सकते।

—सोज होशियारपुरी

अभी थककर बैठ न हमसफर न अभी से रात का जिक्र कर।

अभी दिन है अपनी गिरफ्त में अभी रोशनी है गुफाओं में।

—मंजूर अख्तर

सफलता की शायद ही ऐसी कोई राह हो, जिसमें फूल-ही-फूल खिले हों! वस्तुतः सफलता तक ले जाने वाली राह कांटों से भरी होती है। 'पांव फूलों पे रखने से पहले, तुम्हें कांटों पे चलना पड़ेगा।' इस तथ्य को न स्वीकारने का फल होता है, कांटे की प्रथम चुभन में ही वापसी के लिए कदम बढ़ा लेना। भाई! चलने के पहले ही संकल्प ले लो न, 'मैं किसी भी परिस्थिति में मैदान नहीं छोड़ूंगा।' संसार के युद्ध में कभी मैदान छोड़ना हितकर हो सकता है। लेकिन साधना-सफलता के क्षेत्र में मैदान छोड़ना सदैव अहितकर होगा। एक विदेशी कहावत है—यदि आपको इंद्रधनुष देखना है तो वर्षा की मार सहनी पड़ेगी।

रुककर और लौटकर आप वहां नहीं पहुंच सकते जहां पहुंचना चाहते हैं। वह नहीं पा सकते, जो पाना चाहते हैं। वह नहीं हो सकते, जो होना चाहते हैं। वह नहीं बन सकते, जो बनना चाहते हैं। वह नहीं कर सकते, जो करना चाहते हैं। अतः प्रारंभ में ही अपने साधन-शक्ति, मार्ग एवं मंजिल के सभी पहलुओं पर विचार लें, विधिवत निर्णय कर लें फिर चलें और लौटने के बारे में न सोचें। परिस्थितियां चाहे जो हों, बाधाएं चाहे जितनी आयें, आप आगे बढ़ते जायें। हर महान काम पहले असंभव नजर आता है। अतः लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करें और सतत गतिमान रहें। सफलता अवश्य मिलेगी। यदि मंजिल तक नहीं पहुंचे तो भी सौदा घाटे का न होगा।

लक्ष्य न ओझल होने पाये, कदम बढ़ाता चल।

मंजिल तेरे पग चुमेगी, आज नहीं तो कल।

कोई भी कोशिश कभी नाकाम नहीं हो सकती।

मंजिल अगर ना भी मिली, तो फासले घट जाएंगे।

इस बीच एक सचाई को भी ध्यान में रखना चाहिए। निःसंदेह आपके जीवन में ऐसे भी समय रहे होंगे, जब आप बहुत सोच-विचार कर निर्णय लिये हों। लेकिन कुछ दूर चलने के बाद यह एहसास हुआ हो 'मैं गलत लक्ष्य का चुनाव कर लिया हूं। यह मेरी शक्ति के बाहर है या नैतिकता के विरुद्ध है। अगर मुझे दुबारा चुनाव का मौका मिले तो मैं अलग चुनाव करूंगा।' सारी सचाई की जानकारी एक बार में नहीं भी हो सकती है। हम सही निर्णय लेना कैसे सीखते हैं? गलत निर्णय लेकर। ऐसी स्थिति में आप पुनः लक्ष्य निर्धारित करके चलना शुरू कर दीजिये। अनावश्यक पश्चाताप करके अपने जीवन के अमूल्य समय को बरबाद न करें। हां, परिणामों को गुरु बनने दीजिये। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने बहुत अच्छी सीख दी है—

आदमी को चाहिए वह जूझे

परिस्थितियों से लड़े,

एक स्वप्न टूटे तो दूसरा गढ़े।

हम सबको कुदरत के नियम को समझना चाहिए। कुदरत के नियम सर्वत्र व्याप्त हैं। यहां सब कुछ नियम से होता है। सफलता और असफलता के भी नियम होते हैं। सुख-दुख, शांति-अशांति भी निश्चित नियम के तहत मिलते हैं। मशहूर टेनिस कोच, एडवर्ड सिमन्स ने कहा है, 'असफलता अचानक होने वाली प्रलयकारी घटना नहीं है। आप रातोंरात असफल नहीं होते। दरअसल, असफलता प्रतिदिन दोहराए जाने वाली कुछ गलतियों की परिणति है।' इसका उल्टा भी उतना ही सच है। अंततः उसी रास्ते में चलना श्रेयष्कर है, जहां अंत में सुख, समृद्धि, प्रसन्नता एवं शांति ही शांति हो।

□

## सच और सच का व्यवहार

लेखक—श्री धर्मदास

अर्थ के आधार पर 'असली', 'विशुद्ध', 'अकृत्रिम', 'यथार्थ', 'वास्तविक', 'चोखा', 'ठीक', 'पक्का' इत्यादि सच के पर्याय हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न अवसरों पर प्रयोग किया जाता है। लेकिन प्रश्न है कि हमारे व्यवहार में सच का किस हद तक समावेश है? क्या हम सच का व्यवहार करते हैं? अथवा क्या सच का अभ्यास करना लोगों को पसंद आता है?

घर और विद्यालय प्रारंभिक शिक्षा के दो प्रमुख केन्द्र हैं। बालक सच का पहला सबक घर में अपने माता-पिता से लेता है और दूसरा सबक अपने अध्यापक से विद्यालय जाने के बाद। विद्यालय में अध्यापक नैतिकशास्त्र पढ़ाते हैं—“सदा सच बोलो”। घर में बालक खेल रहा था। गेंद उछलकर कांच के शो पीस में लगा और टूट गया। बालक घबराया, सोचा खूब डांट पड़ेगी। आकर उसने मां से सच-सच बता दिया। मां ढाढ़स देते हुए बोली—मत घबरा, तेरे पिता जी को मैं समझा लूंगी। जब पिता घर लौटे तब मां ने उनका खूब आवभगत किया। मौका पाकर बोली—कांच का शो पीस टूट गया, कृपा करके गुस्सा मत करिये। 'कांच का शो पीस टूट गया' सुनकर ही पिता भड़क गया, आगे उसने कुछ नहीं सुना। पिता ने कहा—'जरूर तुम्हारे शैतान बेटा की करतूत होगी, वही घर को खेल का मैदान बनाये रखता है।' मां बोली—'नहीं, नहीं। इसमें उसका कोई दोष नहीं। साफ कर रही थी, हाथ से छूट गया और टूट गया।' पिता बोला—'बस, तू तो गंवार की गंवार रह गयी। जानती हो कितना कीमती था वह? विदेशी आइटम था...'। बालक का स्वभाव निश्छल होता है। उसे लगा कि मां ने सच को छिपाया, ठीक नहीं है और मेरे गुनाह की सजा मां को मिले, यह भी ठीक नहीं है। पिता जी को सच बता देना ही ठीक होगा। बालक बोला—'पिता जी, मां मुझे बचा रही है। आपने ठीक समझा था, मुझसे ही गेंद लगा और

टूट गया।' पिता का गुस्सा फूट पड़ा, और कनैठी चढ़ाते हुए दो-चार थप्पड़ गाल और पीठ पर जड़ दिये।

इस उदाहरण में सोचने वाली बात है कि मां ने सच का त्याग किया और ममता में बहकर झूठ का सहारा लेकर बेटा को बचाने का प्रयास करती रही। उससे भी बड़ी भूल थी कि मां ने सच का सामना करने का हौसला बढ़ाने के बजाय झूठ बोलकर बचने का पाठ अनजाने में अपने पुत्र को पढ़ा दिया। पिता पीछे नहीं रहा, उसने सच को महत्त्व देने के बजाय चीज के मूल्य को तरजीह दी। बालक किसे अपनाये? द्विविधा में पड़कर सब कोई सुगम मार्ग का चयन करता है। सच के मार्ग पर चलने से पिटाई पड़ती है, यह बालक के लिए पहला पाठ था।

ऐसा रोज देखने-सुनने को मिलता है। विद्यालय निरीक्षक विद्यालय पहुंच गये। प्रांगण में बीड़ी का जला अवशेष उन्हें दिखाई दिया। कक्षा में उन्होंने सवाल कर दिया—'विद्यार्थियो! सच बताइये, विद्यालय में कौन-कौन बीड़ी पीता है?' कक्षा में सब चुप थे तब एक विद्यार्थी बोला—'हमारे सर जी पीते हैं।' कक्षा में सब को तम्बाकू से परहेज करने की नसीहत दे निरीक्षक तो चले गये लेकिन उस विद्यार्थी को सर जी ने खूब पीटा।

सच बोलने पर पिटाई, झूठ बोलने पर पिटाई—घर में होती है और विद्यालय में भी। कर्ज मांगने वाला जब घर आता है तब घर पर होते हुए भी पिता कहता है—'बोल दे पिता जी घर में नहीं है।' बालक बोल देता है—'पिता जी कह रहे हैं कि पिता जी घर में नहीं हैं।' विद्यालय में अध्यापक भी निरीक्षक के आगमन के पूर्व ठीक से सिखा-पढ़ा देता है। भले रोज देर से स्कूल आता हो परन्तु सिखलाता है कि निरीक्षक के पूछने पर बोलना कि मास्टर जी टाइम से आते हैं। सच और झूठ के बीच का भेद बालक बेचारा

भला कैसे जाने? सच बोलने पर पिटाई तो झूठ में भी पिटाई। जीवन के प्रारंभिक काल में यदि सच का ऐसा अभ्यास कराया जायेगा तब अनुमान लगाया जा सकता है कि बालक बड़ा होकर जीवन में कैसा व्यवहार करेगा।

घर और पाठशाला के अतिरिक्त मनुष्य के जीवन में गुरु, आचार्य, धर्माचार्य, साधु, संत, ऋषि, मुनि, संन्यासी, वैरागी आदि पुरुषों का प्रभाव अधिक पड़ता है क्योंकि इन पर लोग विश्वास करते हैं। जब से मानव समाज में विश्वास और आस्था का अंकुरण हुआ है तब से ही लोगों ने मान लिया है कि उपर्युक्त श्रेणी के व्यक्ति सच के पुजारी हैं। जो भी बोलते हैं वह सच होता है; जो भी करते हैं वह सच का मार्ग होता है; जो भी सिखाते हैं वह हमारे कल्याण के लिए है। आज तक किसी ने ईश्वर, भगवान, खुदा अथवा गॉड को नहीं देखा, किन्तु इन्होंने बतलाया कि हमारे सृजनहार, पालनहार और संहार करने वाले हैं और हमने मान लिया। इन्होंने पढ़ाया कि खुदा मस्जिद में, भगवान मंदिर में, गॉड चर्च में रहते हैं हमने विश्वास कर लिया कि ये सच बोलते हैं और इसीलिए ये स्थान हमारे पूजा स्थल हैं। जब भी कोई इन वाक्यों पर संशय प्रकट करता है तब हमें लगने लगता है कि हमारे आस्था और विश्वास का अपमान किया जा रहा है। सदियों के विश्वास को बिखरता हुआ देखना-सुनना सहन नहीं होता। गुरु, धर्माचार्य, पादरी, मौलवी, पुरोहित, संत-महात्मा के पास जाकर हम संदेह दूर करना चाहते हैं। ये हमें वेद, कुरआन, बाइबिल, स्मृति, पुराण, महाभारत, रामायण, गीता पढ़कर सुनाते हैं और उपदेश करते हैं कि ये ईश्वर-रचित हैं। इनमें जो भी लिखा है सब सच है। तुम्हें बहकाने वाले मिलेंगे। इन पर अविश्वास करोगे तो पाप लगेगा और मरने के बाद नरक मिलेगा जहां असीम यातनाएं सहनी होंगी। इनकी पूजा करो; इनमें लिखी बातें ईश्वर वचन मानकर इन पर संदेह नहीं करो। इसे मानने पर स्वर्ग एवं बहिश्त नसीब होगी। वहां अप्सराएं एवं हूरें (स्वर्ग एवं जन्नत में सेवा करने वाली सुन्दरियां) तुम्हारी सेवा करेंगी। वहां जो चाहोगे सब कुछ मिलेगा।

प्राचीन काल से धर्माचार्य और धर्मशास्त्र इन्हीं बातों का पाठ पढ़ाते रहे। लेकिन संत कबीर ने मौलिक प्रश्न किया :

1. 'प्रथम आरम्भ कौन को भयऊ, दूसरा प्रकट कीन्ह सो ठयऊ' (बीजक, रमैनी 3) अर्थात सबसे पहला कौन था जिससे सृष्टि आरम्भ हुई? दूसरा प्रश्न है कि वह कौन स्थान है जहां पर ठहरकर बनाने वाले ने रचना की?

2. 'वर्णहु कौन रूप औ रेखा, दूसर कौन आहि जो देखा' (बी., रमैनी 6) अर्थात ईश्वर, खुदा, गॉड के किस रूप और लक्षण का वर्णन करते हो? तुम्हारे बाद कौन है जिसने उसे देखा है?

दुनिया भर में असंख्य धर्मशास्त्र बने हैं। भारत में चार वेद, अनेक ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, अठारह पुराण, रामायण एवं महाभारत—दो महाकाव्य आदि धर्मग्रन्थ बने। विदेशों में तौरैत—वह आसमानी ग्रंथ जो हजरत मूसा पर उतरा था, जबूर—वह आसमानी किताब जो हजरत दाऊद पर उतरी थी; इंजील—वह धर्मग्रंथ जिसे बाइबिल या न्यू टेस्टामेंट कहा जाता है; कुरआन अल्लाह का अंतिम और पूर्ण आदेश एवं मार्ग-दर्शन है; हदीस पैगंबर साहब की फरमाई हुई बात है। बौद्धों, जैनों, शैवों, तांत्रिकों, नाथों, सिद्धों आदि के धर्मग्रंथों के नाम की सूची तैयार करने पर एक मोटी पुस्तक बन जायेगी। ऋषि-मुनि, अर्हत-श्रमण, पीर-पैगंबर, पादरी, आचार्य, दार्शनिक एवं सन्त-महापुरुष सभी पूज्य हैं तथा सबके लिए हृदय में श्रद्धा एवं प्रेम है। श्रद्धा से किसी का मत मान लिया जाये तो किसका माना जाये? सबको मान लिया जाये तो गुड़ और गोबर को एक समान मानने जैसी बात होगी। वेद को मानने वाले कहते हैं कि वेद ईश्वर वाक्य है, जो वेद में लिखा है, वह सत्य है। कुरआन के मानने वाले कहते हैं कि कुरआन अल्लाह का अंतिम मार्गदर्शन है, उसके बाद कोई सत्य कहने वाला पैदा नहीं हुआ। बाइबिल मानने वाले कहते हैं कि बाइबिल ईश्वरीय वाक्य है, अतः जो बाइबिल में लिखा है, वही सत्य है।

वेद को न मानने वाले को वेदवादी नास्तिक कहते हैं, तो कुरान को न मानने वाले को काफिर कहा जाता है। ईसाई कहते हैं जो प्रभु यीशु पर विश्वास नहीं करेगा, उसका उद्धार नहीं होगा। यहूदी कहते हैं यीशु में कोई सामर्थ्य नहीं है। जैनी कहते हैं हमारे गुरु सुगुरु-सुदेव और अन्य के गुरु कुगुरु-कुदेव हैं। बौद्ध कहते हैं जो बुद्ध का ज्ञान न जाने वह अज्ञ पृथकजन है। वाल्मीकीय रामायण के दाक्षिणात्य पाठ में एक श्लोक आता है :

यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि।  
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां सनास्तिके नाभिमुखो बुधः स्यात्।

गीताप्रेस द्वारा अर्थ लगाया गया है कि “जैसे चोर दण्डनीय होता है, उसी प्रकार (वेद विरोधी) बुद्ध (बौद्ध मतावलम्बी) भी दण्डनीय है। तथागत (नास्तिकविशेष) और नास्तिक (चार्वाक) को भी यहां इसी कोटि में समझना चाहिए। इसलिए प्रजा पर अनुग्रह करने के लिए राजा द्वारा जिस नास्तिक को दण्ड दिलाया जा सके, उसे तो चोर के समान दण्ड दिलाया ही जाये; परन्तु जो वश के बाहर हो, उस नास्तिक के प्रति विद्वान् ब्राह्मण कभी उन्मुख न हो—उससे वार्तालाप तक न करे।” (अयो० कां० 109 सर्ग 34वां श्लोक)। यहां रामायण में बुद्ध, बौद्धमतावलम्बी, नास्तिक एवं चार्वाक को चोर के समान दण्ड देने के लिए राजा को निर्देश दिया गया है। दूसरी तरफ श्रीमद्भागवत स्कंध 1, अध्याय 3, श्लोक 22 में अवतारों के नाम हैं जिनमें भगवान बुद्ध इक्कीसवें अवतार माने गये हैं और श्रीराम अठारहवें स्थान पर है। भगवान बुद्ध को हम भगवान मानें या ‘....’। धर्माचार्यों एवं धर्मग्रन्थों के किस बात को प्रामाणिक मानें? कौन प्रामाणिक है?

वाल्मीकीय रामायण (अयो. कां., 109 सर्ग, 12-13) लिखता है—

(1) ‘धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते’

संसार में सत्य ही धर्म की पराकाष्ठा है और वही सबका मूल कहा जाता है।

(2) ‘सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।  
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्।’

जगत में सत्य ही ईश्वर है। सदा सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है। सत्य ही सबकी जड़ है। सत्य से बढ़कर दूसरा कोई परम पद नहीं है।

भारत में आजतक जितनी साहित्यिक रचनाएं की गई हैं उनमें कोई रचना नहीं है जो वाल्मीकीय रामायण की लोकप्रियता की बराबरी कर सकी हो। यहां तक कि रामायण के आदर्शों को पूरे भारत में सत्य का प्रतीक माना जाता है और यह भी प्रसिद्ध है कि सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं है। परन्तु जैन मुनि विमल सूरि द्वारा ईसा के बाद तीसरी सदी की रचना ‘पउम चरिया’ में अनेक वक्तव्यों की सत्यता को चुनौती दी गई है। ‘पउम चरिया’ के हिन्दी अनुवाद के लिए वी.एम. कुलकर्णी द्वारा अंग्रेजी में भूमिका लिखी गयी है जिसमें उन्होंने लिखा है कि—

Vimalsuri holds that the Ramayana Stories (of the Hindu poets) are most certainly lies; he thinks that the absurdities which are related regarding the life of Rama, Ravana, Kumbhakarna and others are not worthy of belief. and that the poets who composed Ramayana were liars (विमलसूरी की मान्यता है कि हिन्दू कवियों की रामायण की कहानियां अधिकांशतः निःसंदेह झूठी हैं; वह मानते हैं कि बेतुकापन जो राम, रावण, कुम्भकर्ण एवं अन्य के जीवन के सम्बन्ध में हैं वे विश्वास योग्य नहीं हैं, और वे कवि लोग जिन्होंने रामायण की रचना की, वे झूठे थे—पृ० 29)।

संदेहास्पद विषयों को विमलसूरि द्वारा राजा श्रेणिक और गौतम के बीच संवाद के रूप में रखा गया है (पद सं० 104-18, श्रेणिक चिंताविधान), जो निम्नवत है :

“राजा श्रेणिक सोचने लगा कि—मेरा मन अत्यंत संदेहशील होता है कि अति बलशाली राक्षसों को वानरों ने कैसे मारा? लौकिक शास्त्रों में ऐसा सुना जाता है कि रावण आदि सभी राक्षस मांस, रक्त और चर्बी आदि का भक्षण और पान करते थे; कुम्भकर्ण निरन्तर छः मास

तक शैया में सोता रहता था। हाथियों से कुचले जायें, घड़ों तेल से कान भरे जायें, बड़े-बड़े नगारों की ध्वनि की जाये, पर वह नहीं उठता था। जगने पर उसके सामने हाथी, भैंसा आदि जो कुछ आता था उसे निगल जाता था।...‘मृग ने सिंह को मार डाला’, ‘कुत्ते ने हाथी को भगा दिया’—ऐसी विपरीत और अंसभव बातों से भरी हुई रामायण कवियों ने रची है। यह सब झूठ है और तर्क एवं विश्वास के विरुद्ध है। जो पंडित हैं वे ऐसी बातों में श्रद्धा नहीं रखते।”

“राजा के पूछने पर गणधरों में इन्द्र के तुल्य गौतम कहने लगे—हे नरेन्द्र! कान लगाकर तुम सुनो। केवली ने जैसा कहा है वैसा ही मैं तुमसे कहता हूँ। दशानन (रावण) न तो राक्षस था और न मांसभक्षी ही था। मूर्ख कवियों ने जो कुछ कहा है वह सब मिथ्या है....

(नय रक्खसो ति भण्णइ, दसाणेणा णेय आमिसाहारो।  
अलियं ति सबमेयं, भणन्ति जं कुकइणो मूढा।)

उपर्युक्त संदर्भ में हम पाते हैं कि ‘पउम चरिया’ के रचयिता ने रामायण को कुशास्त्र, उसके लेखकों को झूठा तथा रावण एवं कुम्भकर्ण संबंधी तथ्यों को अविश्वसनीय करार दिया है। हम भारतवासियों के लिए वाल्मीकि और विमलसूरि श्रद्धेय कवि तथा महर्षि हैं लेकिन सच एक होता है। समस्या है किनके वचनों को सच और प्रामाणिक मानें? संस्कृत का एक श्लोक हम माध्यमिक पाठ्यक्रम में पढ़ा करते थे :

‘सत्यं ब्रुयात् प्रियं ब्रुयात्।  
न ब्रुयात् सत्यम् अप्रियम्।’

यदि इन वाक्यों को नैतिकता के आदर्श वाक्य मानें तो हमें अप्रिय सच का उद्घाटन नहीं करना चाहिए लेकिन एक सच यह भी है कि भौतिक विज्ञान के नियम स्थिर नहीं होते परन्तु नैतिक और आध्यात्मिक नियम सदा स्थिर होते हैं। सभी शास्त्रों के रचनाकार आध्यात्मिक गुरु एवं धर्माचार्य रहे हैं और उन्हें हम अपना आदर्श मानते हैं। उनके उपदेशों एवं उनकी

रचनाओं को ईश्वर वाणी समतुल्य मानकर उन पर श्रद्धा और विश्वास करते हैं। इन ग्रन्थों से विदित होता है कि एक जिसे सच कहता है दूसरा उसे ही झूठ साबित करता है। उनमें कौन पंडित है और कौन मूर्ख? साधारण जन के लिए यह बड़ा धर्मसंकट है कि कौन धर्मग्रन्थ या धर्माचार्य को सच मानकर उनकी बातों का अनुसरण करें। रामायण ने बुद्ध और चार्वाक को नास्तिक एवं चोर के समतुल्य दंड का अधिकारी बतलाया है।

देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय ने भारतीय दर्शन (पृ० 177-78) में लिखा है कि “शिष्यों के द्वारा आध्यात्मिक प्रश्नों को सुनकर बुद्ध चुप हो जाते थे और बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों में अति प्रश्नों के पूछने से रोका। श्रावस्ती के जेतवन में विहार के अवसर पर मालुंक्वपुत्त ने बुद्ध से लोक के शाश्वत, अशाश्वत, अन्तवान्, अनन्त होने के तथा जीव और शरीर की भिन्नता, अभिन्नता आदि के विषय में दस प्रश्नों को पूछा, परन्तु भगवान ने आचारमार्ग के लिए वैराग्य, उपशम, अभिज्ञा (लोकोत्तर ज्ञान), संबोधि (परमज्ञान) तथा निर्वाण (आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति) के उत्पादन करने में साधक न होने से अव्याकृत-कथन के अयोग्य बतलाया। इस विषय में उन्होंने एक बड़ा ही सुन्दर दृष्टान्त दिया। यदि कोई व्यक्ति विषदग्ध बाण से बिद्ध होकर कराहता हो, और बंधु-बंधव चिकित्सा के लिए किसी विषवैद्य को बुलाने के लिए उद्यत हों, तो क्या उस रोगी के लिए वैद्य के नाम, गोत्र, रूप, रंग आदि की जानकारी के लिए आग्रह करना पहले दर्जे की मूर्खता नहीं है? भवरोग के रोगी प्राणियों की दशा भी ठीक ऐसी ही है। उन्हें अध्यात्म को लेकर क्या करना है? उन्हें तो कर्तव्यमार्ग की रूपरेखा को जानना ही जरूरी है।

कर्तव्य-शास्त्र के विषय में बुद्ध ने चार आर्य-सत्यों का अपनी सूक्ष्म विवेक बुद्धि से रहस्योद्घाटन किया है—1. इस संसार में जीवन दुःखों से परिपूर्ण है; 2. इन दुःखों का कारण विद्यमान है; 3. इन दुःखों से वास्तविक मुक्ति मिल सकती है तथा 4. इस निरोध के

लिए उचित उपाय या मार्ग है। सत्यों की संख्या अनन्त है परन्तु अत्यधिक महत्त्व रखने से ये ही सत्य-चतुष्टय सर्वश्रेष्ठ हैं।”

भगवान बुद्ध ने निर्वाण प्राप्ति के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का विधान रखा—1. सम्यक् ज्ञान (आर्य सत्यों का तत्त्वज्ञान); 2. सम्यक् संकल्प (दृढ़ निश्चय); 3. सम्यक् वचन (सत्य वचन); 4. सम्यक् कर्मात् (हिंसा, द्रोह, दुराचरण-रहित कर्म) 5. सम्यक्-आजीव (न्यायपूर्ण जीविका); 6. सम्यक् व्यायाम (बुराइयों को न उत्पन्न होने देना तथा भलाई के वास्ते सतत उद्योग करना), 7. सम्यक् स्मृति (चित्त, शरीर, वेदना आदि के अशुचि अनित्य रूप की उपलब्धि और लोभादि चित्त संताप से अलग हटना); 8. सम्यक् समाधि (राग-द्वेषादि द्वन्द्व के विनाश से उत्पन्न चित्त की शुद्ध नैसर्गिक एकाग्रता)। इस अष्टांगिक मार्ग के यथार्थ सेवन से प्रज्ञा का उदय होता है और निर्वाण की सद्यः प्राप्ति हो जाती है (वही, पृ. 181-82)।” इसके साथ ही बुद्ध ने ‘शील’ के द्वारा शारीरिक शोधन पर विशेष जोर दिया है। “बुद्ध दर्शन में तीन साधन हैं शील, समाधि तथा प्रज्ञा। शील से समग्र सात्त्विक कर्मों का तात्पर्य है जिनका पालन करना प्रत्येक बौद्ध का कर्तव्य है। शील के पांच घटक हैं—अहिंसा, अस्तेय (चोरी न करना), सत्य भाषण, ब्रह्मचर्य तथा नशा का सेवन न करना (वही)। समाधि के अभ्यास करने का अन्तिम फल चित्तवृत्तियों का प्रत्यक्षानुभव है (यह उपनिषद् में भी है)। प्रज्ञा तीन प्रकार की है—श्रुतमयी (आप्त प्रमाणजन्य निश्चय), चिन्तामयी (युक्ति से उत्पन्न निश्चय) तथा भावनामयी (समाधिजन्य निश्चय)। अतः बुद्ध की शिक्षाओं का सारांश शील, समाधि तथा प्रज्ञा—इन तीन शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है (वही, पृ. 183)।

यदि बौद्ध दर्शन के मौलिक सिद्धान्तों पर गौर करें तो पता चलता है कि बुद्ध धर्म की आधारशिला आचार-प्रधान तथा कर्तव्य-प्रधान दो स्तम्भों पर खड़ी की गई है जिसमें यथार्थज्ञान, सत्यवचन, दुराचरण रहित

कर्म, न्यायपूर्ण जीविका, बुराइयों से विरत होने की प्रेरणा, हिंसा से दूर रहना, चोरी न करना, सत्य भाषण, ब्रह्मचर्य तथा नशा न करने पर जोर दिया गया है। शील के साथ प्रज्ञा एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के साधन हैं। प्रज्ञा का अर्थ—बुद्धि, विवेक, ज्ञान, समझ आदि हैं। बुद्ध दर्शन का प्रज्ञा शब्द कबीर साहेब के ‘पारख’ शब्द का नजदीकी है। दोनों शब्दों से तात्पर्य है सत्य और असत्य समझने की शक्ति और इसी को पारख कहते हैं। अतः वाल्मीकीय रामायण की टिप्पणी सच से परे है। संत श्री अभिलाष साहेब ने लिखा है :

“बौद्धमत के चार आर्य सत्य सर्वमान्य तथ्य होना चाहिए। इनका कोई विरोध नहीं कर सकता। तथागत बुद्ध जगत को अनादि एवं अनन्त मानते हैं। इसका कोई कर्ता ईश्वर नहीं मानते। वे किसी पुस्तक के स्वतः प्रमाणवाद तथा जातिवाद के भी विरोधी हैं। यह सब भी पारख सिद्धान्त के अनुकूल ही है (कबीर दर्शन: पृ. 588)।” भगवान बुद्ध के आर्य अष्टांगिक मार्ग एवं पंचशील के सिद्धान्त विश्व में शांति, भाईचारा तथा मानवता की रक्षा के लिए आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। पंचशील के सिद्धान्त को मूर्तरूप दिया देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने। अविकसित देशों के साथ आपसी सम्बन्धों को इस सिद्धान्त के आधार पर स्थापित करके विश्वमंच पर एक अलग राजनीतिक पहचान बनी जिसका नेतृत्व नेहरू जी ने किया। इसके पूर्व अमेरिका और रूस के नेतृत्व में दो खेमा बंटा हुआ था। बाद के वर्षों में रूस भी नेहरू जी से प्रभावित होकर विश्वमंच पर उनके साथ हो गया।

—क्रमशः

- ❖ जिस परिवार, समाज और राष्ट्र के सदस्यों में पारस्परिक एकता, संगठन और सहयोग भावना है उसे कोई परास्त नहीं कर सकता।
- ❖ कथनी की अपेक्षा करनी सदैव श्रेयस्कर होती है। इसीलिए वाणी की अपेक्षा कर्मों की ध्वनि सदैव ऊंची होती है।
- ❖ व्यक्ति महान बनकर नहीं पैदा होता, किन्तु



वह अपने कर्मों से महान बनता है ।

# व्यवहार वीथी

## जीने की कला

दुनिया में चित्रकला, मूर्तिकला, हस्तकला, शिल्पकला, नाट्य कला, संगीत एवं वाद्य कला, वास्तुकला, प्रवचन कला, लेखन कला आदि अनेक कलाएं हैं। इन सब कलाओं का अपना मूल्य एवं महत्त्व है और आवश्यकता भी, किंतु सर्वाधिक मूल्यवान एवं महत्त्वपूर्ण है जीवन जीने की कला। इस कला के अभाव में सारी कला बे-कला सिद्ध होती हैं। बाहरी जितनी भी कलाएं हैं वे सब जीवन-निर्वाह की सुविधाएं जुटाने में सहायक हो सकती हैं और सामाजिक मान-सम्मान, प्रशंसा, प्रतिष्ठा दिलाने में भी, किंतु वे जीवन को सुंदर बनाने में, जीवन निर्माण में सहयोगी नहीं हो सकतीं। गांधी जी ने कहा है—सच्ची कला वह है जो आत्मदर्शन में सहायक हो। जिस कला के पीछे उदात्त जीवन न हो वह कला कैसी। कला मूल्यवान तभी है जब वह जीवन को ऊपर उठाये।

इस बात का महत्त्व नहीं है कि किस आदमी ने कितना लंबा जीवन जीया, किंतु महत्त्व इस बात का है कि उसने कैसा जीवन जीया और जीकर क्या किया। जीवन जीने की सच्ची कला यह है कि उम्र बढ़ने के साथ-साथ मन तनाव एवं शिकायत रहित सरल, शांत, संतुष्ट होता जाये और मन की प्रसन्नता बढ़ती चली जाये। किसी भी व्यापार की सफलता है उत्तरोत्तर मुनाफा बढ़ते जाना। इसी प्रकार जीवन-व्यापार की सफलता है उत्तरोत्तर सुख, संतोष, शांति एवं प्रसन्नता बढ़ते जाना। और यह तब होगा जब समय, योग्यता, शक्ति अनुसार परिश्रम हो, यथाप्राप्त में संतोष हो और मनुष्यों के साथ कोमल-मधुर व्यवहार हो।

जीवन प्रसन्नतापूर्ण एवं आनंदप्रद कैसे हो, आइये इस पर थोड़ा विचार करें—

1. भुनभुनाते हुए नहीं गुनगुनाते हुए जीयें—  
भुनभुनाते हुए जीने का अर्थ है हर बात, हर काम, हर

वस्तु और हर व्यक्ति में दोष-कमी देख-देख कर कुढ़ते रहना और शिकायत में पड़े रहना। ऐसा करने से जिंदगी नरक बन जाती है। यह न देखें कि दूसरों के मुकाबले आपको क्या-क्या नहीं मिला, किंतु यह सोचें कि आपके पास बहुत-सी ऐसी चीजें हैं जो लाखों-करोड़ों के पास नहीं हैं। जो चीजें आपके पास नहीं हैं उनको प्राप्त करने की चिंता में दुबले न होकर जो चीजें आपके पास हैं उनका अच्छा से अच्छा उपयोग करें और प्रसन्न रहें। इसके साथ भरपूर परिश्रम करते चलें आपको आपकी आवश्यकता की सारी चीजें समयानुसार मिलती चली जायेंगी।

कमियों, त्रुटियों, दोषों को ही न देखते रहकर सकारात्मक दृष्टि से देखें तो आपको अपने चारों तरफ प्रसन्नता एवं सुख की सामग्री बिखरी हुई दिखाई पड़ेंगी। भुनभुनाते एवं कुढ़ते रहने से न तो चीजें बदलेंगी न परिस्थिति और न व्यक्ति किंतु जीवन अधिक दुखद एवं बोझिल बनता चला जायेगा। इसके विपरीत हर बात, काम और परिस्थिति में खुश रहने से जीवन हलका और निःभार बनता चला जायेगा।

ध्यान दें, चीजों की कमी के कारण आदमी दुखी नहीं होता है किंतु आदमी दुखी रहता है अभाव की अनुभूति एवं असंतोष के कारण। ऐसे अनेक लोग हैं जिनके पास चीजों की, रुपये-पैसे की कमी नहीं है बल्कि उनके पास आवश्यकता से सैकड़ों-हजारों गुना ज्यादा चीजें, रुपये-पैसे हैं, परंतु न तो उनके मन में प्रसन्नता है और न होठों पर मुस्कान। वे हर समय दुख, अशांति एवं चिंता में ही जीते हैं, क्योंकि उनके मन में हर समय अभाव की अनुभूति बनी रहती है। इसके विपरीत ऐसे बहुत-से लोग हैं जिनके पास चीजें, रुपये-पैसे बहुत कम हैं, परंतु वे हर समय प्रसन्न रहते हैं और उनके चेहरे पर मुस्कान बनी रहती है। वे हर समय गुनगुनाते रहते हैं।

अपनी इच्छाओं पर संयम रखें, जो प्राप्त है उसमें संतोष रखें, सद्गुण-सदाचार का आचरण करें, मन को कोमल-विनम्र बनाकर रखें, लोगों के साथ प्रेमपूर्वक

मधुर व्यवहार रखें, निष्कामभाव से सेवा-परायण रहें, सेवा के अवसरों का अधिक से अधिक लाभ लें, प्रतिकूल परिस्थिति में धैर्य रखें और सहनशील रहें, यही है जीवन जीने की कला, फिर पूरा जीवन गुनगुनाते हुए व्यतीत होगा।

**2. विषाद नहीं प्रसाद मानें—**दुनिया में कोई भी परिस्थिति, वस्तु एवं व्यक्ति एकरस रहने वाला नहीं है। यहां हर चीज हर समय बदल रही है। यहां अनुकूलता, सुख, सुविधा, आराम की अपेक्षा प्रतिकूलता, दुख, असुविधा, कष्ट ज्यादा मिलते हैं और किसी का जीवन इनसे अछूता नहीं है। इसलिए इनके आने पर विषाद न मानें किंतु इन्हें प्रसाद मानकर स्वीकार करें और यह समझें कि ये सब मेरे जीवन में चमक-निखार लाने तथा जीवन को ऊपर उठाने में सहयोगी हैं।

हम किसी मंदिर में, सत्संग-समारोह में या संत-गुरु के पास जाते हैं और हमें वहां प्रसाद रूप में जो कुछ मिलता है, उसे हम प्रसन्नतापूर्वक खुश होकर विनम्र भाव से स्वीकार करते हैं। यह नहीं देखते कि वह क्या है और कितना सस्ता और महंगा है। प्रसाद तो प्रसाद। बस इसी प्रकार अनुकूलता-प्रतिकूलता, सुख-दुख, सुविधा-असुविधा, आराम-कष्ट, मान-अपमान सबको प्रसाद मानकर ग्रहण करें। फिर न तो अनुकूलता, सुख, सुविधा, मान आदि मिलने पर इनका अहंकार होगा और न प्रतिकूलता, दुख, असुविधा, अपमान, कष्ट आदि मिलने पर मन में खिन्नता एवं विषाद होगा बल्कि हर समय मन प्रसन्नता से भरा होगा।

**3. लेना नहीं देना सीखें और शुरू करें—**हर आदमी के मन में हर समय कुछ न कुछ पाने की कामना होती है और जब यह कामना पूरी नहीं होती तब वह दुखी हो जाता है और व्यक्ति, परिवार, समाज, परिस्थिति सबकी शिकायत करने लग जाता है और जितनी शिकायत करता है उतना ही मन अधिक दुखी, पीड़ित, तनावग्रस्त एवं अवसादग्रस्त होता चला जाता है। फिर सबके प्रति उसका व्यवहार कटु होता चला

जाता है। परिणाम में न स्वयं सुखी रह पाता है और न दूसरों को सुख से जीने देता है।

हर आदमी दूसरों से पाना तो चाहता है, परंतु देना नहीं चाहता। देने में कंजूसी एवं अनुदारता बरतता है। जब देना जानता ही नहीं, तब दूसरों से मिलता है इसका अनुभव कैसे करेगा। दूसरों को देता भी है तो वह देता है जो स्वयं अपने लिए पसंद नहीं करता। और वही जब लौटकर अपने को मिलता है तब दुखी और पीड़ित होता है।

पाने का तो बढ़िया रास्ता और उपाय है देना। जो पाना चाहते हैं वह दूसरों को अधिक से अधिक देना शुरू करें। फिर आप अनुभव करेंगे कि जितना आप दे रहे हैं उससे कई गुना ज्यादा आपको मिल रहा है। आप स्वयं सोचें कि आप दूसरों से क्या पाना चाहते हैं? आप ही नहीं हर आदमी दूसरों से प्रेम, स्नेह, आदर, सम्मान, कोमल व्यवहार, मधुर वाणी पाना चाहता है। बस यही आप दूसरों को देना शुरू करें फिर अपने आप यह सब आपको मिलने लगेगा।

दूसरा आपको क्या दे रहा है इस पर ध्यान न देकर इस पर ध्यान दें कि आप दूसरों को क्या दे रहे हैं। दूसरों से अशुभ पाकर उन्हें शुभ दें, दुख पाकर सुख दें, अपमान पाकर सम्मान दें, फटकार पाकर प्यार दें, क्रोध पाकर क्षमा एवं प्रेम दें, कठोरता के बदले कोमलता एवं कटु-कठोर वाणी, अपशब्द के बदले प्रेमभरी मीठी वाणी दें। इससे दूसरों को तो लाभ होगा ही, मुख्य लाभ अपना होगा। दूसरों के जीवन में परिवर्तन आये या न आये अपना जीवन तो परिवर्तित होगा ही। अंदर मन में निरंतर प्रसन्नता बनी रहेगी। फिर जो हम देंगे वही हमें मिलेगा। खेत में जैसा बीज बोयेंगे वैसी ही तो फसल तैयार होगी। किसी के साथ अच्छा व्यवहार करने का अर्थ है अपने लिए अच्छी पूंजी इकट्ठी करते जाना।

एक व्यक्ति क्रोध में आकर एक संत को खूब गाली दे रहा था और संत उससे मीठे शब्दों में बात कर रहे थे। किसी ने कहा—महाराज! यह व्यक्ति तो आपको

गाली दे रहा है और आप इससे मीठे शब्दों में बात कर रहे हैं। इससे तो यह और सिर पर चढ़ जायेगा। उसकी बात सुनकर एक अन्य व्यक्ति ने कहा कि भाई! जिसमें जो रस रहेगा वही तो निकलेगा। दोनों के अंदर से अपना-अपना रस ही निकल रहा है। सद्गुरु कबीर ने कितना सटीक कहा है—जो रहे करवा सो निकरे टोंटी। इसलिए लेने एवं पाने की भावना छोड़कर देना शुरू करें। वह भी शुभ ही दें, अशुभ नहीं। जितना आप देंगे उससे अधिक आपको मिलता चला जायेगा। देने वाले को कभी कमी का, खोने का अनुभव नहीं होता। जितना आप देते जायेंगे उतना आपका मन प्रसन्नता से भरता चला जायेगा।

समाज से हमें बहुत कुछ मिला है। समाज के सहयोग के बिना हम एक दिन भी जी नहीं सकते। इसलिए हम भी कुछ ऐसा करते चलें जिससे समाज की सेवा हो। कायिक, मानसिक, वाचिक ऐसा कुछ भी न करें जिससे समाज की व्यवस्था बिगड़े और समाज में गलत आदर्श उपस्थित हो। जो आदमी सबको अपने से और अपने को सब में जोड़कर देखता है वह ऐसा कोई काम कर ही नहीं सकता जिससे दूसरों को तकलीफ हो, क्योंकि किसी को तकलीफ देने का अर्थ है अपने को तकलीफ देना।

**4. निष्क्रिय नहीं, सक्रिय रहें**—यह तो आपने सुना होगा कि 'खाली दिमाग शैतान का घर होता है' और यह भी कि 'व्यस्त रहें मस्त रहें'। जब आदमी के पास कोई काम नहीं होता और वह खाली बैठा रहता है तब उसके मन में प्रायः नकारात्मक चिंतन चलने लगता है और सब तरफ उसे दोष ही दोष, कमी ही कमी दिखाई पड़ने लगती है। इससे मन अधिक उलझता चला जाता है और जीवन बोझिल लगने लगता है। इसलिए खाली न बैठें कुछ न कुछ सकारात्मक काम करते रहें। इससे शरीर स्वस्थ रहेगा, समय का सदुपयोग होगा और समाज की सेवा होगी।

किसी ने कहा है कि आदमी किसी की निंदा-चुगुली या किसी से लड़ाई-झगड़ा कब करता है जब

उसके पास करने को कोई अच्छा काम नहीं रहता। सकारात्मक एवं रचनात्मक काम में संलग्न आदमी के पास दूसरों की नुक्ताचीनी, निंदा, बुराई, शिकायत करने का अवसर कहां रहता है। यह सौभाग्य (?) तो उसे प्राप्त होता है जो निष्क्रिय-आलसी बनकर बैठा रहता है। क्योंकि उसका शरीर भले निष्क्रिय हो, किंतु मन तो निष्क्रिय नहीं रहता और मन का स्वभाव है कि यदि उसे कोई सकारात्मक काम-दिशा न दिया जाये तो वह नकारात्मक दिशा में तुरंत चला जाता है। इसलिए किसी न किसी सकारात्मक एवं रचनात्मक काम में अवश्य लगे रहें।

सक्रियता का अर्थ अपने को चारों तरफ से उलझा लेना नहीं है। यह तो और उलटा हो जायेगा। जीवन व्यापार की सफलता तो इसमें है कि जितने दिन बीतते जायें मन अधिक-अधिक सुलझता जाये। सक्रियता का अर्थ हर समय स्थूल काम में ही लगा रहा जाये यह नहीं है। समय से स्थूल व्यावहारिक काम तो करें ही, उससे अवकाश निकाल कर स्वाध्याय (सद्साहित्य का अध्ययन) तथा चिंतन-मनन, ध्यान भी करते चलें। मन की ग्रंथियां इसी से सुलझेंगी।

यदि किसी ने आपके मन के अनुकूल काम नहीं किया तो इसके कारण उसकी शिकायत न करें, किंतु उसके द्वारा आपको कभी किसी प्रकार से कुछ भी सहायता मिली है, उसने आपके अनुकूल काम किया है तो इसके लिए उसका आभार मानें। यदि गंभीरतापूर्वक सोचेंगे तो आभार मानने के लिए आपको बहुत कुछ दिखाई पड़ेगा। दूसरों का इतना उपकार हमारे ऊपर है कि हम उसका बदला कभी चुका नहीं सकते। जितना दूसरों का आभार मानते जायेंगे, मन उतना विनम्र, कोमल और शिकायत रहित होता चला जायेगा। फिर दूसरों के प्रति अपना व्यवहार भी कोमल एवं मधुर होता चला जायेगा। जिससे अपने मन में भी प्रसन्नता रहेगी और दूसरों के मन में भी। यही है जीवन जीने की असली कला।

—धर्मेन्द्र दास

# एक अखंड नियम जो सर्वत्र है

लेखक—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

मनुष्य के सामने सृष्टि का अनंत विस्तार फैला हुआ है। वैज्ञानिक और पौराणिक दोनों ही अपनी-अपनी दृष्टि से सृष्टि की अनंतता के विषय में एकमत हैं। विज्ञान के अनुसार यह ब्रह्मांड सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओं के पारस्परिक संघटन और विघटन का परिणाम है। यज्ञ की परिभाषा में ये परमाणु कुछ-कुछ वेदि चयन की इष्टकाओं की भांति जान पड़ते हैं, जिनको विधाता ने अत्यंत स्थिर रीति से अपने स्थान में प्रतिष्ठित कर रखा है। काल के संततवाही प्रवाह में इनके ध्रुव बिंदु अविचाली रहकर सृष्टि की धुरी को पकड़े रहते हैं। परमाणु की आंतरिक रचना अत्यंत जटिल है। वस्तुतः उसके रहस्य के समक्ष विज्ञान के मनीषी उपासकों की प्रतिभा भी आज तक पूरी विजय नहीं पा सकी। परमाणु का केन्द्र क्या है, उसकी परिधि पर चकराते हुए विद्युतकणों का यथार्थ स्वरूप क्या है, यह एक पहेली है। क्या इन कणों का अंतिम रूप भौतिक है, अथवा क्या ये केवल विद्युत की तरंगें हैं, इन प्रश्नों का संतोषप्रद समाधान विज्ञान को प्राप्त करना शेष है। हो सकता है, यह रहस्य मानवी मस्तिष्क के लिए इसी प्रकार दुरूह बना रहे। अथवा यह भी संभव है कि कुछ क्षणों के लिए प्रकृति अपने रहस्यमय प्रांगण की एक झांकी मनुष्य के लिए सुलभ कर दे। यह उसके स्वयं की इच्छा पर निर्भर है। जो अज्ञात और अपरिचित है, वही रहस्यमय है। जो रहस्य है वही आकर्षण से युक्त है। वैज्ञानिक तत्त्वों का आरोहणीयान् रूप एकांततः आकर्षण और सौंदर्य भाव से संपन्न है। विश्व का महत रूप भी अत्यंत विलक्षण है। कहां एक ओर हमारी यह पृथ्वी और कहां दूसरी ओर ऐसे-ऐसे दूरस्थ नक्षत्र और नीहारिकाएं, जिनके प्रकाश को हमारी पृथ्वी तक पहुंचने में करोड़ों वर्ष तक लग जाते हैं। ब्रह्मांड की कुक्षि में हमारी पृथ्वी जैसे अगणित नक्षत्र भरे हुए हैं। उनकी संख्या निर्धारित करने में गणित के अंक हमारी सहायता

करने में हिचकित करते हैं। कैलाश को तौलने वाले दशग्रीव रावण के समान ये दशविध अंक भी अंततः रो देते हैं। किन्हीं वैज्ञानिकों का यह कहना है कि निखिल ब्रह्मांड की तुलना में एक नन्हा-सा सिकता कण, किसकी सांत्वना के लिए हो सकता है?

पुराणों की भाषा का प्रयोग करें तो अनंत विश्व का यह रूप और भी काव्यमय प्रतीत होगा। विराट विष्णु के एक-एक रोम में कोटि-कोटि ब्रह्मांडों का समावेश कहा जाता है। परंतु उन सब के पीछे जो महान तत्त्व है उसके नियम से बहिर्गत कुछ नहीं है। संभवतः उस तत्त्व का रोआं भी इस सृष्टि से पूरी तरह विपरिणाम या विकार को प्राप्त नहीं हो पाता। उसके लिए अनिर्दिष्ट अंश में ही यह जगत परिच्छिन्न है।

\* \* \*

सूक्ष्म और विराट विश्व के अनंत रूप को एक सूत्र में ग्रथित करने वाला रहस्य क्या है? चौदह कोटि प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित नक्षत्रों में परमाणु के विकास और विलय के जो नियम कार्य कर रहे हैं वे ही हमारे समीप में हैं। ध्रुव नक्षत्र या अगस्त्य नक्षत्र में जीवन और मृत्यु का जो अनुशासन है वही इस पृथ्वी पर है। जो यहां है वही सर्वत्र है, जो यहां नहीं है, वह अन्यत्र भी नहीं है। यही सरलतम वैज्ञानिक नियम है। किसी देश-विशेष में ऐसी गुहा नहीं है जहां प्रकृत रहस्यों की कुंजी छिपी हो। 'सर्वे सर्वत्र सर्वदा' शाश्वत अनुभव है। भूत-भविष्य-वर्तमान में विश्व प्रवाह की एक अखंड धारा बह रही है। पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर, ऊपर-नीचे सब दिशाओं में एक नियम की अखंड स्थिति है। देश और काल के कोठे में ओर से छोर तक एक नियम व्याप्त है। यही ऋत का तंतु है। यह धागा प्रत्येक परमाणु में पिरोया हुआ है। जड़-चेतन सब में ऋत का एक तंतु ओत-प्रोत है। विज्ञान का यही ध्रुव आधार है। एक परमाणु पर जिस प्रकार के प्रयोग का जो परिणाम एक शताब्दी पूर्व निकला था, वही आज

अविकल रूप से किसी भी प्रयोगशाला में दोहराया जा सकता है। स्वर्ण के एक कण या विद्युत की एक तरंग की जो भौतिक विशेषताएं हमारे विज्ञान मंदिर में उपलब्ध होती हैं, वे सब हूबहू वैसे ही सूर्य मंडल में या उससे भी दूर पर स्थित नक्षत्र-जगत में विद्यमान हैं। ऋत की अखंडता देश और काल से ऊपर की वस्तु है, दूरी और समय का कैसा भी व्यवधान ऋत के नियमों में परिवर्तन नहीं कर सकता। इसी आश्वासन से प्रेरित होकर वैज्ञानिक अहर्निश अपने प्रयोग और अन्वेषण में निरत रहते हैं। प्रकाश और ताप, विद्युत और चुंबक, सृष्टि के इन देवों की सर्वत्र एकरस गति पाई जाती है। सहस्रातिसहस्र परीक्षण करने पर भी इनके नर्तन की अस्खलित गति में किसी प्रकार का विपर्यय नहीं पाया गया। उषा हमारे आकाश में नित्य प्रति संचरण करने आती है। ऋषि ने उसे 'पुराणी युवति' कहा है। सृष्टि के पहले दिन से जब उसके रूप को देखकर भगवान हंसे होंगे क्या आज तक उसके रमणीय ललाम भाव में किसी ने कुछ अंतर देखा है?

इसका कारण विश्व का अखंड नियम है जो सर्वत्र फैला हुआ है। वैज्ञानिक इसे सुप्रीम लॉ कहकर श्रद्धा से प्रणाम करते हैं। पूर्व ऋषियों ने इसे ऋत कहा है। पृथ्वी जिस संचार पथ या क्रांतिवृत्त पर घूमती है, वह पथ विश्व के ऋत ने उसके लिए स्थिर किया है। सौरमंडल में एवं सर्वत्र नक्षत्र समूह के आकर्षण-प्रत्याकर्षणों का जो अंतिम निर्णय हुआ उसी ने पृथ्वी के लिए ऋत मार्ग की व्यवस्था की। सूर्य, चंद्र, ग्रह, उपग्रह सभी ऋत पथ के अनुयायी हैं। वेदों में देवों को 'ऋतावृधः' अर्थात् ऋत से बढ़ने वाला कहा गया है। ऋत को जानना ही सच्ची प्रज्ञा है। ऋतज्ञ और ऋतधी विशेषण ज्ञानी के लिए प्रयुक्त हुए हैं। अग्नि ऋत से घिरा हुआ (ऋतप्रवीत) है। ज्ञानाग्नि और ऋत का शाश्वत मेल है। ज्ञान चक्षु जहां देखता है उसे विश्व-नियंता के ऋत का दर्शन होता है। ऋषि ने कहा है—

परि द्यावापृथिवी सद्यऽइत्वा  
परि लोकान् परि दिशः परि स्वः ।  
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य  
तदपश्यत् तदभवत् तदासीत्/

द्युलोक और पृथ्वी, लोकांतर और दिशाएं सर्वत्र मैंने ऋत के तंतु को फैला हुआ देखा। वह ऋत ही सब कुछ हुआ है। उस ऋत के सूत्र को देखने के लिए मैंने समस्त भुवनों की यात्रा की—

परि विश्वा भुवनान्यायम्  
ऋतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।

(अथर्व)

अर्थात् मैं निखिल ब्रह्मांड के सब लोकों में ऋत के फैले हुए तंतु को देखने के लिए घूम आया।

यही अनुभव कागभुशुंडि ने अवध से ब्रह्मलोक और शिवलोक से इंद्रलोक पर्यन्त घूमकर प्राप्त किया था। सर्वत्र एक ही वैष्णवी माया का दर्शन हुआ। वे जहां गये वहीं राम का हाथ उनके पीछे लगा रहा—

ब्रह्म लोक लागि गयउं मैं चितयउं पाछ उड़ात ।  
जुग अंगुल कर बीच सन राम भुजहिं मोहिं तात/   
सप्तावरन भेद करि जहां लगे गति मोरि ।  
गयउं तहां प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउं बहोरि/

अर्थात् ब्रह्मलोक तक भागते हुए जब-जब मैंने पीछे मुड़कर देखा, अपने से दो ही अंगुल की दूरी पर राम का हाथ मुझे दीख पड़ा। विश्व के सात परदों को भेदकर जहां तक जा सका मैं गया, परंतु राम की भुजा ने मेरा पीछा न छोड़ा। राम की भुजा राम के नियम का प्रतीक मात्र है। देश और काल के साथ अन्य सब कुछ परिवर्तन को प्राप्त हो जाता है। परंतु 'प्रजापति का नियम' सदा सर्वत्र एक-सा बना रहता है। राम का नियम स्वयं राम है। विधाता और उसका सृष्टि-नियम एक दूसरे से पृथक नहीं किये जा सकते। कागभुशुंडि ने सप्त आवरणों को पार करते हुए लोक-लोकांतरों में और सब कुछ बदलते हुए देखा पर अकेले राम वैसे-के-वैसे बने रहे—

भिन्न-भिन्न मैं दीख सबु अति विचित्र हरिजान ।  
अगनित भुवन फिरेउं प्रभु राम न देखेउं आन/

(उत्तर कांड, दोहा, 81)

राम के उदर में जो ये अनंत ब्रह्मांड निकाय हैं उनमें सृष्टि की विचित्रता वर्णन से परे है। लोक-लोकांतरों में

पृथ्वी, नदी, समुद्र, पर्वत, वनस्पति, पशु और प्राणियों के प्रपंच को देखकर मानवी बुद्धि चकराने लगती है। वैज्ञानिक लोग सूम के धन की तरह एक-एक कौड़ी जोड़ते हुए इस विचित्र विश्व के विविध ज्ञान का संग्रह करते हैं। प्रशांत महासागर की तलहटी में पड़े हुए घोंघों की पाचन-प्रणाली और स्वांस नली की टटोल करते हुए उनके युग बीत जाते हैं। परंतु इस बहुधा विस्तार का कहीं अंत नहीं मिलता। इन सबके भीतर जो अंतर्दामी सूत्रात्मा है वही इस प्रपंच के उन्मत्त विस्तार को अर्थवान बनाता है। उस अंतर्दामी सूत्र का वाचक ऋत है। सीता के चरणों में चोंच मारकर भागे हुए जयंत की कथा का रहस्य भी यही है। ऋतावरी देवी के चरणों का जो अपराधी है, उसे ब्रह्मांड में कहीं भी शरण नहीं मिल सकती।

\* \* \*

प्रत्येक प्राणी प्राण का प्रकट चिह्न है। श्वा प्राण को कहते हैं। उसका जो शेष या चिह्न है वही है। यों तो

विराट् प्राण सर्वत्र व्यापक है, पर वही चींटी से लेकर पर्यन्त शरीरों में स्फुट या प्रकट हो रहा है। मनुष्य जीवन के लिए ज्ञान का नैतिक फल क्या है, यही बताना शूनःशेष उपाख्यान का प्रयोजन है। दार्शनिक ज्ञान वही सच्चा है जिससे मनुष्य के नैतिक का, उसके सुकर्म और दुष्कर्मों का, नियंत्रण हो सके। भारतीय दर्शन ने इसी दृष्टि को प्रधान रखा है।

बुद्ध भगवान ने अपनी अखंड समाधि में प्रज्ञा के नेत्रों से विश्वव्यापी महान 'धम्म' का साक्षात्कार किया वह भी सृष्टि का नियम है। प्राचीन ऋत का ही नामांतर 'धर्म' है। धम्म या धर्म का मनुष्य के नैतिक जीवन के साथ संबंध ही कम्म या कर्म है। धर्म-कर्म इन्हीं दो पहियों से मानव जीवन का रथ गतिशील रहता है।

(वासुदेव शरण अग्रवाल रचना-संचयन, चयन एवं संपादन: कपिला वात्स्यायन, साहित्य अकादमी से साभार)  
(दैनिक हिन्दुस्तान 23 जून, 2013 से साभार)

## संतुलन है जिंदगी

लेखिका—साध्वी समीक्षा

अच्छा जीवन जीने के लिए सुन्दर मन की आवश्यकता है और मन को सुन्दर बनाने के लिए सन्तुलन की। सन्तुलन वह रसायन है, जो तन और मन को सुव्यवस्थित एवं स्वस्थ बनाता है। बाग फूलों से आकर्षक एवं खुबसूरत लगता है, वैसे ही सन्तुलन से व्यक्तित्व में निखार आता है। गाड़ी के दोनों पहिये समान हों तभी वह सही ढंग से चल सकती है। यदि एक पहिया एक इंच भी बड़ा या छोटा हो तो वह बेढंगा एवं बदसूरत दिखेगी या दुर्घटना भी घट सकती है। इसी प्रकार हमारे जीवन रूपी गाड़ी में मन, वाणी एवं इंद्रियां सन्तुलित स्थिति में होनी चाहिए तभी हमारे जीवन जीने की शैली सही हो सकती है।

यदि मन में विकार आ जाये तो वाणी और इंद्रियां बिगड़ जायेंगी और वाणी एवं इंद्रियां असंयमित होने लगे तो मन बिगड़ जायेगा और हमारा जीवन नीचे की ओर बहता चला जायेगा। मन में हम जैसे विचारों के बीज बोयेंगे वह उसी तरह फलित होगा। एक बीज बोने से केवल एक ही फल नहीं होता किन्तु कई गुना बढ़ जाता है। मन बड़ा शक्तिशाली है। मन का दुख ही सबसे बड़ा दुख है। मन से ही सुख और दुख की अनुभूति होती है। सुख और दुख कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है, जिसे दुकान में खरीदा या बेचा जा सके। यह मन की उपज है। मन के अनुकूल प्राणी-पदार्थ मिलने पर सुख और प्रतिकूल होने पर दुख होता है। सुख का अभाव ही दुख

है। हम सबके जीवन में सुख और दुख के पल आते हैं। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसके जीवन में सुख ही सुख या दुख ही दुख हो। सुख और दुख धूप और छांव की तरह हमारे साथ लगे रहते हैं। किसी की जिंदगी सुख और दुख से अछूती नहीं है। चाहे वह राजा हो, चाहे रंक; चाहे अमीर हो, चाहे गरीब, चाहे विद्वान हो या मूर्ख। जिसे हम भगवान मानते हैं वे भी इनसे नहीं बच पाये। जब सुख के दिन आते हैं, तब उसके जिम्मेदार हम स्वयं को मानते हैं और जब दुख के दिन आते हैं, तो दूसरे पर थोपते हैं। जैसे माता-पिता पर, भाई-बहन पर, पति-पत्नी पर, मित्र-मित्र पर, गुरु-शिष्य पर या अपने माने हुए कल्पित देवी-देवताओं पर। सुख और दुख के कर्ता हम स्वयं हैं। अपने द्वारा किये हुए शुभाशुभ कर्म ही सुख-दुख देते हैं। प्राणी-पदार्थों के प्रति आसक्ति ही दुख का मूल कारण है।

*सर्व परवशं दुखं सर्वमात्मवशं सुखम्।*

परतंत्रता ही सब प्रकार का दुख है और आत्मस्ववशता सबसे बड़ा सुख है। संकट या समस्या कोई भी व्यक्ति पैदा कर सकता है, पर विश्व में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो किसी को दुखी बना सके। क्या राजा हरिश्चन्द्र को कम संकट आया? उनका राज्य गया, पत्नी गई, स्वयं भी बिक गये। भयंकर संकट आया, पर क्या वे दुखी हुए? बिल्कुल नहीं। सद्गुरु कबीर, महावीर स्वामी और तथागत बुद्ध के समक्ष क्या-क्या संकट पैदा किये गये। पर वे क्या दुखी बनें? सुकरात को जहर दिया गया, पर उन्हें क्या दुखी बनाया जा सका? क्या जहर की प्याली ने मीरा को दुखी बनाया? महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन में बचपन से लेकर अंतिम घड़ी तक समस्याओं एवं संकटों के बादल मंडराते रहे, पर उन्हें क्या दुखी बनाया जा सका? ये ऐसी महान विभूतियां हैं जो अपने जीवन के अंतिम श्वास तक संकटों से लड़ते रहे और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सफलता हासिल किये। इसलिए आज इनका नाम इतिहास के पन्नों पर स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाता है। प्रतिकूलता ही स्वर्णिम जीवन की पहली किरण है।

दुनिया का हर दुख अपने गर्भ में एक न एक सुख छिपाये रहता है। बस उसी को पकड़ना है और जीना है। समुद्र मंथन से केवल विष नहीं निकला था अमृत भी निकला था। जीवन को भी मथें, दुख के बाद सुख निकलेगा। सोना को जितना आग में तपाओ, उतना ही उसमें चमक आती है, वैसे ही हम जीवन को जितना संघर्षों एवं दुखों में तपायेंगे, उतना ही उसमें चमक आयेगी। हमारी सोच और हमारा नजरिया सकारात्मक होना चाहिए, तो दुख में भी सुख दिखेगा। यदि हमारे पास झोपड़ी है तो महल वाले को नहीं, किन्तु जिसके पास रहने के लिए छाया भी नहीं है उसे देखकर जीयें। यही है दुख में सुख ढूंढने की कला।

बादशाह अकबर के दरबार में जितने भी करीबी थे, उनमें बीरबल का नाम सबसे पहले याद आता है। बादशाह बीरबल की बुद्धिमानी व चतुराई से बहुत प्रभावित रहते थे। जैसा भी प्रश्न बादशाह द्वारा पूछा जाता बीरबल उसका उतना ही सटीक व सही उत्तर देकर उनकी जिज्ञासा शांत कर देते। एक बार बादशाह ने कहा—ऐसा लिखो कि जिसे खुशी के वक्त पढ़ें तो गम याद आ जाये और गम के वक्त पढ़ें तो खुशी याद आ जाये। बीरबल ने कुछ देर सोचा, फिर कागज पर लिखा, 'यह वक्त गुजर जायेगा'। बीरबल के इस उत्तर से अकबर काफी खुश हुए।

दरअसल यह वाक्य जिंदगी की सच्चाई से हमारा परिचय कराता है। सभी जानते हैं कि सुख-दुख हमारे जीवन के दो पहलू हैं जिनका क्रमानुसार आना-जाना लगा ही रहता है। लेकिन सब कुछ जानते-समझते हुए भी हम दोनों ही वक्त अपनी भावनाओं एवं संवेदनाओं पर काबू नहीं कर पाते कि आज जो समय है उसे कल बीतना ही है। जो भी हमारे साथ अच्छा या बुरा घटित हो रहा है वह अस्थायी है। 'ऋतुओं की तरह सुख और दुख तो जीवन भर हमारे साथ ही चलेंगे क्योंकि दोनों से हमारा जिंदगी भर का नाता है। जब सुख के पल हमारे झोली में होते हैं तो कई बार स्वयं में इतने मग्न हो जाते हैं कि हमें अच्छे-बुरे किसी की सुध नहीं रहती। अपनी



किस्मत व भाग्य पर इठलाते हुए अहंकारवश कुछ ऐसे कर्म कर जाते हैं जिससे खुद का या दूसरों का अहित हो जाता है। हम बीते हुए कल को भूल आने वाले कल की परवाह न करते हुए क्षणिक सुख को स्थायी मानकर जीने लगते हैं और इसी सोच के चलते कहीं न कहीं हमारे कार्य करने की लगन प्रभावित होती है और स्वयं को उतना योग्य व सफल साबित नहीं कर पाते जितना कर सकते थे। बुद्धि, विवेक, आत्मबल होने के बावजूद हम स्वयं को इतना दयनीय और बेचारा महसूस करने लगते हैं कि हमारे आत्मसम्मान और स्वाभिमान तक के मायने बदल जाते हैं। यही कारण है कि हमारे पास सब कुछ होते हुए भी हम कमजोर व्यक्तित्व को अपनाकर जीवन भर हर क्षेत्र में असफल होने लगते हैं और यूं ही बाकी का जीवन बिना लक्ष्य एवं उद्देश्य निर्धारित किये बीत जाता है।

हर दिन यदि हम जीवन को गौर से देखें तो पायेंगे आक्रमण हो रहा है बाहर भी और भीतर भी। बाहर संसार में प्रतिस्पर्धा के आक्रमण और भीतर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुर्गुणों के आक्रमण। वे लोग बच पायेंगे जो वास्तव में बलवान हैं। बलवान का अर्थ आत्मबल, दृढ़ इच्छा शक्ति, व खुद को पहचानने में समर्थ होना। ऐसा बली व्यक्ति यह जानता है कि जब जीवन में सुख आता है तो वह कहता है सुख आया पर मैं सुखी नहीं हूँ। दुख आया पर मैं दुखी नहीं हूँ। मैं इनसे अलग हूँ। मेरी शक्ति इन परिस्थितियों से अलग रखती है। वे जीवन को आईने की तरह देखते हैं। जैसे सुंदर चेहरा सामने आये तो आईना खुश नहीं होता और कोई सामने न हो तो भी आईना वही रहता है। बलवान अर्थात् सत्पुरुष जीवन को ऐसे ही जीता है। मन, वाणी और इंद्रियों से कभी विचलित नहीं होता। सुख-दुख, हानि-लाभ, यश-अपयश, मान-अपमान हर परिस्थिति में संतुलित जीवन जीता है।

मन की शांति के लिए वाणी में संतुलन की बड़ी आवश्यकता है। वाणी का हमारे जीवन में बड़ा महत्त्व है। व्यक्ति के व्यक्तित्व की झलक वाणी से होती है। जो

अधिक बोलता है वह झूठ बोले बिना रह नहीं सकता, क्योंकि उसका दिल सच्चा नहीं होता। जीभ बहुत छोटी होती है। कहते हैं कि सिर्फ दो इंच की होती है, किन्तु इसमें इतनी शक्ति है कि चाहे तो यह दुनिया को स्वर्ग बना सकती है चाहे तो नरक। टूटे हुए दिलों को जोड़ भी सकती है तथा जुड़े हुए दिलों को तोड़ भी सकती है। आग लगा भी सकती है तथा आग बुझा भी सकती है। समझदारी इसी में है कि आग न लगाये। समझदार व्यक्ति बोलने से पहले विचारता है और मूर्ख व्यक्ति बोलने के बाद सोचता है। पशु इसलिए दुखी है कि मन की बात बता नहीं सकता है और मनुष्य इसलिए दुखी है कि वह बोलकर नया दुख उत्पन्न कर लेता है, जिससे चाहकर भी बच नहीं सकता। दुनिया की आधी लड़ाइयां कटु वाणी के कारण होती हैं।

महाभारत में द्रोपदी ने दुर्योधन को कहा था अंधे के पुत्र अंधे होते हैं। इसी के कारण दुर्योधन के हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला इतनी भभक उठी कि उसने सारी मर्यादाएं तोड़ दी। एक भूल ने द्रोपदी को जिंदगी के भयानक कगार पर लाकर खड़ा कर दिया। वाणी में सन्तुलन न होने के कारण महायुद्ध होता है, जिसमें लाखों निर्दोष व्यक्ति मारे जाते हैं। कटु वाणी एक विस्फोटक पदार्थ है, जो सब कुछ जलाकर नाश कर देता है। कटु वाणी से व्यक्ति कभी-कभी आत्महत्या करने एवं गलत रास्ता अपनाने के लिए विवश हो जाता है। धारदार हथियार से वार करने पर जीवन एक ही बार में समाप्त हो जाता है, किन्तु कटु वाणी रूपी हथियार से वार करने पर व्यक्ति को जीवन भर भीतर-ही-भीतर सालता रहता है। अतः बोलने से पहले विचार लें कि कहने लायक है या नहीं, फिर किसी के दिल को पीड़ा एवं तकलीफ देने वाली बात नहीं होगी। यदि बोलने का तरीका जाने तो वाणी के बराबर कोई धन नहीं है। हीरा तो रुपये में बिकता है, लेकिन उत्तम शब्दों का मोल-तोल नहीं है। सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा है—

*शब्द बराबर धन नहीं, जो कोई जाने बोल।*

*हीरा तो दामों मिले, शब्दहि मोल न तोल।*

जीवन एक तराजू है, जिसमें दोनों होंठ पलड़ों के समान हैं। दोनों होंठों के बीच जीभ कांटे के समान है। हम कैसे शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं, वाणी संतुलित है या असंतुलित, इसकी नाप-तौल जीभ से होती है। अधिक बोलना और बिलकुल न बोलना दोनों हमारे लिए हानिकारक हैं। अतः हम ऐसी संतुलित वाणी का प्रयोग करें कि मौन रहने की जरूरत न पड़े।

एक बार एक अधिक बोलने वाला व्यक्ति सुकरात के पास आकर कहा—मैं आपसे भाषण देने की कला सीखने आया हूँ। महात्मा सुकरात ने कहा—दो सीख और दो फीस देनी होगी। आपको मालूम है पहले कम बोलना सीखना है, फिर न बोलना सीखना अन्यथा भाषण बकवास बन जायेगा। समाज, परिवार या संघ में एक दूसरे के प्रति अविश्वास एवं बिखराव का कारण है कटु वाणी। कई लोगों की आदत होती है, छोटी-छोटी बातों में चिल्लाने की, बेवजह डांटने-फटकारने की। इसे सुनकर ऐसा लगता है जैसे वे सब पर अपना आधिपत्य जमाना चाहते हों। लोग मुझे डरें, मेरी बात मानें और मुझ पर श्रद्धा रखें, किन्तु ऐसे व्यवहार से उनके प्रति श्रद्धा तो नहीं होगी, घृणा जरूर पैदा होगी। जब हमें गलत व्यवहार और कठोर वचन खुद को पसंद नहीं हैं तो हमें दूसरों के प्रति भी ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए। हम इतने व्यस्त और असहाय नहीं हैं कि दूसरों को मीठी वाणी न दे सकें। मीठी वाणी बोलने में जीभ को कोई तकलीफ नहीं होती है।

*इंसान को इंसानियत की तराजू से तौलिए।*

*दो शब्द ही सही मगर प्यार से बोलिए।*

मीठी वाणी हो किन्तु छलपूर्ण या असत्य न हो, अपितु सत्य और धर्म युक्त होनी चाहिए। हम जैसी वाणी का प्रयोग करते हैं, उसका असर मन पर पड़ता है, और जैसे मन में सोचते हैं वैसे इंद्रियों में, आचरण में उतरता है और उसी के आधार पर शुभ-अशुभ कर्म बनते हैं। अतः जब कथनी, करनी और रहनी में एकरूपता होगी तभी मन, वाणी और इंद्रियां संतुलित होंगे। जिसके मन, वाणी एवं इंद्रियां संतुलित हैं, उसके

जीवन में पवित्र संस्कारों का मधु होता है। उसके द्वारा किया हुआ हर कर्म पूजा बन जायेगा जो खुद और दूसरों के लिए कल्याणकारी एवं प्रेरणास्पद होगा। भोजन में जैसे नमक जरूरी है, वैसे ही जीवन में संतुलन। हर जगह बेहद जरूरत है संतुलन की। बुद्ध ने एक शब्द दिया था मंझम मगग यानी मध्यम मार्ग। जीवन का यह संतुलन उन्हें एक दिन वह सब दिला गया जिसके लिए उन्होंने तपस्या की थी। उनकी बोध प्राप्ति की अवस्था में उनसे एक प्रश्न पूछा गया था जिसका उन्होंने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया था। किसी का प्रश्न था अब आप को क्या मिला? क्या वह प्राप्त हो गया जिसके लिए आपके सारे प्रयास थे। बुद्ध ने कहा—नया कुछ नहीं मिला, जो कुछ मेरे पास पहले से था, उसका ज्ञान हो गया। वह दौलत अपने ही भीतर थी जिसे हम बाहर ढूँढ रहे थे। हम दो भूल कर जाते हैं या तो बिलकुल संसार में टिक जाते हैं या एकदम भीतर उतर जाते हैं। यही हमारे मार्ग का दुश्मन बन जाता है। संसार के प्राणी-पदार्थों पर जितना मोह करेंगे उतना ही मन में अशांति और पीड़ा होगी। जीवन-निर्वाह एवं व्यवहार के लिए पदार्थ जरूरी है, किन्तु उन्हें अपना मानकर आसक्त होना अज्ञान है।

गीता में कहा गया है—दुःखालयं अशाश्वतम्।

संसार दुख का घर एवं क्षणभंगुर है। संसार में संतुलन से चलने के लिए एक अच्छा उदाहरण बताया है। संसार में ऐसे चलो जैसे हाथी पानी में चलता है। हाथी जानता है यदि मैं पानी में जल्दबाजी करूंगा तो गड़ढे या कीचड़ में गिर सकता हूँ। अतः वह अपने आगे और पीछे का पैर रखने में गजब का संतुलन बनाता है। बस ऐसे ही संतुलन हमें बाहर और भीतर की यात्रा में रखना होगा। जैसे ही हम संतुलन में आते हैं हमारी अंतर दृष्टि स्पष्ट हो जाती है और हम स्वयं को पहचान जाते हैं। स्वयं को पहचानते ही आत्मा का दिग्दर्शन होगा। आत्मा का साक्षात्कार होते ही संसार के सारे द्वन्द्व, कलह, अशांति एवं उपाधियां समाप्त हो जायेंगी और मन में अनंत सुख का सागर लहरायेगा जिसमें सिर्फ शांति ही शांति होगी। □

## ← परमार्थ पथ →

### मन मस्त हुआ तब क्यों बोले

बिना भूख के भोजन करना पेट खराब करना और रोग बुलाना है। कड़ी भूख लगने पर शुद्ध, सुपाच्य और संतुलित भोजन करना चाहिए। इस जगत के संस्कार क्षीण करना चाहिए। यह दृश्यमान पंच विषय अपना नहीं है। जो अनात्म और अनित्य है, उसके मोह को पूर्णतया नष्ट कर देने पर ही आत्मा में स्थिति हो सकती है। याद रखो, तुम चारों तरफ से दुखों से घिरे हो, बड़ी सावधानी से प्राणी-पदार्थों का व्यवहार करो। यहाँ तुम्हारा कोई और कुछ नहीं है। तुम्हारे लिए केवल तुम ही परम सत्य हो। तुम शुद्ध चेतन हो, मायिक प्रपंच से सर्वथा पृथक हो। तुम अपना मन बाहर कहीं न लगाओ, तभी वह आत्मरत हो सकेगा। मन एक है। उसे बाहर लगाओगे तो वह भीतर नहीं ठहर पायेगा।

\* \* \*

देह मिट्टी है। उसके ऊपर पड़े कपड़े मिट्टी हैं। घर मिट्टी है। बिस्तर मिट्टी है। आस-पास फैले ऐश्वर्य कहलाने वाले पदार्थ मिट्टी हैं। संगी-साथियों के शरीर मिट्टी हैं। सोना, चांदी, हीरे, जवाहरात मिट्टी हैं। धरती मिट्टी है और उसी के सब कार्य-पदार्थ हैं। इनमें आत्मा कहां है? यह सब तो अनात्म है। इनका संबंध अनित्य है। आत्मा तो स्वस्वरूप चेतन है जो दिव्य ज्ञानमात्र, अखंड, अविनाशी, एकरस, पूर्णकाम, असंग, अकेला, केवल तथा पूर्ण तृप्त स्वरूप है। मेरा ऐश्वर्य तो आत्म-ऐश्वर्य है। क्या मिला? क्या छूटा? किसी ने क्या कहा? क्या अपमान हो गया? क्या सम्मान हुआ? सब हवा का झोंका, हल्ला-गुल्ला, गर्दा-गुब्बार, पानी-कीचड़। कहां विचलित होना? अखंड अविनाशी आत्मधाम में विश्राम।

\* \* \*

सब कुछ कितना क्षणिक है! सामने कुछ ठहरता नहीं है। शरीर विवश है। यह क्षण-क्षण बदल रहा है और समय-समय से दुख देकर एक दिन लुप्त हो जाता है। संसार कलह से भरा, सर्वत्र आपाधापी, स्त्री, धन, पद, ऐश्वर्य; यहां तक कि महंती, गुरुवाई तक के लिए आपाधापी है। और अंततः किसी के पास कुछ नहीं ठहरता है। संसार में कुछ लोग समझते हैं। शेष तो 'पीत्वा मोहमयी प्रमाद मदिरा उन्मुत्तभूतं जगत' मोहमयी प्रमाद की मदिरा पीकर जगत के लोग उन्मुत्त हैं। यह शरीर और संसार रहने योग्य नहीं हैं। रहने योग्य तो निजस्वरूप का स्थिति-धाम है, जिसमें किसी प्रकार का भय नहीं है, संताप नहीं है और पीड़ा नहीं है।

\* \* \*

जब तक मनुष्य जीता है, पता नहीं क्या-क्या प्रोग्राम बनाता है और क्षण में ही सदा के लिए विदा हो जाता है। जीवन का अंत देखने वाला कहीं भटकता नहीं है। शारीरिक जीवन क्षणिक है। अतएव इसमें रहते हुए सावधान रहना चाहिए कि कहीं मोह-शोक न बने। जहां से अचानक क्षण मात्र में उठ जाना है वहां के लिए क्या मोह-शोक है। अपना अनंत जीवन तो आत्मिक है जो कभी समाप्त होने वाला नहीं है। निर्वाण अनंत है, मोक्ष अनंत है। समझदार साधक को चाहिए कि वह आत्मज्ञान एवं मोक्ष में जीये।

\* \* \*

दृश्य-विलय हुए बिना मोक्ष नहीं हो सकता। अतएव मन से जड़-दृश्य को उतार दो। देह से लेकर सारा संसार अंततः अलग ही है और अलग होकर रहेगा। इसलिए इसे मन से उतारकर ही आत्मशांति मिलेगी। मनुष्य को व्यर्थ का अहंकार होता है। परिवार तथा समाज की व्यवस्था देखने वाले परिवार और समाज के सेवक होते हैं। उन्हें अहंकार से रहित रहकर शीतल रहना चाहिए। अहंकार अपनी मूर्खता का प्रदर्शन करना है। सबके स्वभाव में कूड़ा-कचड़ा है। उन्हें

चाहिए कि वे उसे निरंतर निकालने का प्रयत्न करते रहें।  
विनम्रता ही उद्धार का रास्ता है।

\* \* \*

पुराकाल में संतों की पदयात्रा थी। आज-कल ट्रेन, मोटर-कार आदि से यात्रा है। यात्रा बाहरी है, भीतर तो अखंड विश्राम है। मैं परम सत्य हूँ और देह से लेकर संसार का सारा संबंध क्षणिक तथा अनित्य होने से छूट जाता है, अतएव वह अंततः झूठ हो जाता है। इसलिए सब संबंध झूठ होकर रह जाता है। आत्मराम में रमना ही जीवन का परम आनन्द है। इसी में मोक्ष और परम विश्राम है। यह शरीर एवं जीवन-यात्रा है। मन की यात्रा समाप्त है। अब मन भटकता नहीं है, अपितु अंतर्मुख हुआ आत्मविश्राम में रमता है। आत्मसंतोष, आत्मतृप्ति एवं आत्मविश्राम के समान कोई उपलब्धि है ही नहीं। लोग अबोध-वश रोते-पीटते हैं, दूसरों को दोष देते हैं, दूसरों की बुराई करते हैं। निरंतर आत्मा में रमने वाले के लिए बाहर कहीं रस रह ही नहीं जाता। वस्तुतः बाहर रस है ही नहीं। बाहर रस होने के धोखे में ही सारे क्लेश मिलते हैं। जिसका मन बाह्य विषयों की निस्सारता को ठीक से समझ लिया है, उसका मन बाहर भटक ही नहीं सकता। परमानन्द तो आत्मतृप्ति में है।

\* \* \*

हर मनुष्य की मानसिकता भिन्न है। हर मनुष्य जहाँ अपना लाभ मानता है वहाँ चला जाता है। लाभ-निश्चय के अनुसार मनुष्य अपना रुख बदलता है। तुम किसी को अपना मानने का भ्रम मत करो। कोई आदमी तुम्हारे प्रति प्रेम करता है तो उसका उसमें अपना लाभ निश्चय है। जिस दिन उसका लाभ निश्चय बदल जायेगा, उस दिन वह तुम्हें छोड़ देगा। इसलिए किसी के प्रेम के चक्कर में कहीं मोहग्रस्त मत होना। शुद्ध भाव सबसे रखो और ममता बनाकर किसी से संबंध न रखो। ममता केवल निजस्वरूप चेतन से होना चाहिए; क्योंकि

वह कभी छूटनेवाला नहीं है। मेरा प्रियतम मेरा स्वत्व है, आत्मा है, अपना स्वरूप चेतन है। बाहरी सब तरफ से मुड़कर अपने आपमें ही लीन रहना मोक्ष है, परमानंद है और निर्भय-पद है।

\* \* \*

संसार को भूले बिना गहरी शांति नहीं मिल सकती। और संसार को भूलना ही है। हम रोज-रोज छह-सात घंटे सोते समय संसार को भूल जाते हैं तभी विश्राम मिलता है। जाग्रत अवस्था में भी एक क्षण में केवल एक ही वस्तु को जानते हैं, शेष पूरा संसार भूला रहता है। यह जड़-संसार मेरे शुद्ध चेतन में है ही नहीं। इसको तो हम बलात् अपने ऊपर लादते हैं। इस झूठी देह का अहंकार सर्वथा छूटे बिना सांसारिक विषयों का अहंकार नहीं छूट सकता और अहंकार का सर्वथा विलय हुए बिना पूर्ण आत्मविश्राम नहीं मिल सकता। आज-कल में देह छूट जायेगी और मेरे लिए सारा संसार गायब हो जायेगा। अतएव बुद्धिमान का काम है कि आज ही जड़-दृश्य को चित्त से उतार दे।

\* \* \*

प्रातः नींद खुले और सावधान रहो, बीती हुई अनुकूल और प्रतिकूल घटनाओं तथा देखे-सुने और भोगे हुए प्राणी-पदार्थों और परिस्थितियों की यादों में मत डूबो, अपितु तृणरहित अग्नि की भांति शांत, अहंकारशून्य और कामनाशून्य रहो। सारा संबंध क्षणिक है। तुम्हें बचपन से लेकर आज तक अनेक प्राणी-पदार्थ और परिस्थिति का संयोग मिला, किंतु उनमें से कुछ भी तुम्हारे पास नहीं है। जब शरीर साथ नहीं रह जाता, तब अन्य कुछ क्या रहेगा। अपने आप की असंगता का हर क्षण स्मरण रखो और स्वयं को सब समय सबसे निस्पृह बनाये रखने की साधना में रत रहो। अपने मन के अहंकार और कामना को मार लेने वाला तृणरहित अग्नि की तरह शांत हो जाता है। अपने आप में सदैव शांत रहना ही गहरी समझ का फल है।

## मेरे साथ ऐसा नहीं होगा, लेकिन क्यों?

लेखक—श्री सीताराम गुप्ता

महाभारत की कथा में एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है यक्ष-प्रश्न। पांडवों के वनवास के अंतिम दिनों की घटना है। जब वन में उनका सामना यक्ष से हुआ और उसके प्रश्नों का उत्तर दिये बिना सरोवर से पानी पीने के प्रयास में नकुल, सहदेव, अर्जुन और भीम ये चारों भाई मृतप्राय होकर वहीं गिर पड़े। बाद में युधिष्ठिर ने यक्ष के सभी प्रश्नों का सही उत्तर देकर अपने भाइयों की रक्षा की। यक्ष द्वारा युधिष्ठिर से पूछे गये महत्त्वपूर्ण प्रश्नों में से एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी था कि संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?

युधिष्ठिर ने इस प्रश्न का उत्तर दिया कि हर रोज हमारी आंखों के सामने न जाने कितने लोग मृत्यु के मुख में समा जाते हैं लेकिन फिर भी बचे हुए लोग यही कामना करते हैं कि हम अमर रहें। यही संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है। इस संसार में जो आया है उसे एक न एक दिन इस संसार से जाना ही होगा लेकिन फिर भी इस प्रकार का आचरण करते हैं कि जैसे उन्हें सदा ही यहां रहना है और मृत्यु उनके लिए नहीं है।

यक्ष द्वारा पूछे गये अन्य प्रश्नों के साथ-साथ यह प्रश्न आज भी हमारे समक्ष उस काल के समान ही विद्यमान है। प्रश्न इतने महत्त्वपूर्ण थे कि आज यक्ष-प्रश्न एक मुहावरा अथवा प्रतीकात्मक शब्द बन गया है। न केवल यक्ष द्वारा युधिष्ठिर से पूछा गया प्रश्न कि संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है तथा अन्य प्रश्न आज भी हमारे सम्मुख उत्पन्न व उपस्थित हैं अपितु आज की परिस्थितियों के अनुसार अनेकानेक दूसरे नये यक्ष-प्रश्न भी हमारे सम्मुख उत्पन्न व उपस्थित हैं जिनका उत्तर खोजना अनिवार्य प्रतीत होता है।

यदि आज के संदर्भ में पूछें कि संसार में सबसे बड़े आश्चर्य की बात क्या है तो एक उत्तर तो यही मिलेगा कि जो लोग अपराधों में लिप्त होते हैं वे अवश्य पकड़े जाते हैं और उन्हें सजा भी मिलती है लेकिन फिर भी जो लोग कतिपय कारणों से आज तक गिरफ्त में नहीं आये वे सोचते हैं कि हम थोड़े ही पकड़े जायेंगे। आज समाज में पहले के मुकाबले विभिन्न प्रकार के अपराधों

की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है। अपराधों से ही नहीं अपराधियों को सजा देने से भी सामाजिक ढांचा चरमरा जाता है और स्वस्थ समाज के विकास में बाधक है।

आज नैतिक मूल्यों का ही क्षरण नहीं हो रहा है अपितु अनेकानेक सामाजिक व आर्थिक अपराधों में भी वृद्धि हो रही है। बात कहकर पलट जाना, वादा करके मुकर जाना, अमानत में खयानत, कमजोरों का आर्थिक शोषण, सामाजिक-आर्थिक नियमों की अनदेखी, सरकारी संपत्ति का गबन, पद व स्थिति का दुरुपयोग, टैक्स चोरी, रिश्वत का लेन-देन आदि की बात छोड़िए; बलात्कार, चोरी, डकैती, अपहरण और हत्या जैसे संगीन अपराधों को भी लोग बेखौफ होकर अंजाम दे रहे हैं।

लेन-देन में विवाद होने पर मात्र कुछ रुपयों के लिए किसी की हत्या कर देना, अवैध प्रेम-प्रसंगों के चलते पत्नी अथवा पति की हत्या कर देना अथवा करवा देना, अपने प्रतिद्वंद्वियों अथवा विरोधियों को मरवा डालना आम बात हो गई है। दहेज कानून अत्यंत सख्त होने के बावजूद दहेज के लिए हर साल अब भी न जाने कितने लोग अनेकानेक युवतियों को जलाकर अथवा गला घोटकर मार डालते हैं और स्वयं जिंदगी भर जेल में सड़ने को अभिशप्त हैं। यह आज के संसार का एक महानतम आश्चर्य नहीं है तो और क्या है?

पिछले दिनों देश की राजधानी अथवा अन्य बड़े शहरों में हुई चर्चित डकैतियों, अपहरण और हत्याओं पर नज़र डालिए। अपराधियों ने बड़ी चतुराई से इन घटनाओं का ताना-बाना बुना लेकिन एक भी ऐसा केस नहीं जिसमें अपराधी अथवा हत्यारे न पकड़े गये हों। इसके बावजूद नये अपराधी व हत्यारे पैदा हो जाते हैं और अपने कुकृत्यों के परिणामस्वरूप अपना जीवन नरक बनाने को विवश होते हैं। यह आज के समाज व संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य नहीं तो और क्या है?

हम प्रायः यही सोचते हैं कि हमारी बात और है। मैं अपराध करके बच जाऊंगा। मेरे साथ ऐसा नहीं होगा जो आज अपराधी के साथ होता है। लेकिन क्यों? □

## लाओत्ज़े क्या कहते हैं?

### 9. अति से दूर और निर्माण रहें

1. *To hold on to something and thereby make it overflow :*  
*this is not worthwhile.*  
*To make use of something and still keep it sharp:*  
*this cannot be sustained for long.*
2. *A palace full of gold and diamonds nobody can protect.*  
*To be rich and titled and arrogant into the bargain :*  
*this in itself attracts misfortune.*
3. *When the work is done it is time to withdraw:*  
*this is the DAO of Heaven.*

### अनुवाद

1. पात्र को तब तक भरना,  
जब तक वह छलक न जाये,  
यह उचित नहीं।  
किसी वस्तु का प्रयोग हो,  
तो भी, उसकी धार बनी रहे,  
यह लंबे समय तक संभव नहीं।
2. स्वर्ण और हीरों से भरा महल,  
कोई उसकी सुरक्षा नहीं कर सकता।  
समृद्ध व सम्मानित होना,  
फलस्वरूप अहंकारी हो जाना,  
यही है, दुर्भाग्य को आमंत्रित करना।
3. कार्य सफल हो जाये,  
यही पीछे हटने का सही समय है,  
यही है स्वर्ग का ताओ।

**भावार्थ—**1. पात्र में इतना भरना कि वह बहने लगे, यह उचित नहीं है। किसी वस्तु का लंबे समय

तक बराबर प्रयोग होते रहने पर उसकी धार बनी नहीं रह सकती।

2. सोने, हीरे एवं धन से भरे भवन की बहुत दिनों तक कोई सुरक्षा नहीं कर सकता। धनी होना, सम्मान-प्रतिष्ठा से संपन्न होना और इसके परिणाम में अहंकारी हो जाना अपने हाथ से अपने लिए दुर्भाग्य बनाना है।

3. कार्य सफल हो जाने पर पीछे हट जाने का सही समय है। यही है अनंत सुखदायी विश्वव्यापी नियम का आदर।

**भाष्य—**पात्र को तब तक भरना जब तक वह छलक न जाये यह उचित नहीं है। उदाहरणार्थ, एक कटोरा में हमने दूध डालना शुरू किया और उसमें से दूध उछलकर बहने लगा और हम दूध उसमें डालते ही जाते हैं, तो इसका मतलब क्या हुआ? अति करना। खाने बैठे, खाते-खाते भीतर घंटी बज गयी कि अब काम भर का भोजन पेट में चला गया, अब इसके आगे मुख में नहीं डालना चाहिए; किंतु जीभ-स्वाद के प्रलोभन में पड़कर व्यंजन मुख में डालते गये, तो परिणाम होना है पेट का खराब होना। यदि कोई बराबर अधिक खाता रहे, तो उसके शरीर में नाना स्थायी रोग होना पक्का है।

लोग निर्वाह के लिए धन कमाते हैं। कुछ लोग धन कमाने में सफल हो जाते हैं और उन्हें धन कमाने और उसे बढ़ाने में चस्का लग जाता है। अतएव वे अपना काम ऐसा बढ़ा लेते हैं कि उन्हें खाने, सोने, आराम करने की फुर्सत नहीं मिलती, फिर अध्ययन, ध्यान, सत्संग करने का अवसर कहां? उनका जीवन मशीन बन जाता है और वे तन-मन दोनों से पीड़ित होकर दुख में जीवन का अंत करते हैं।

सफल राजनेता तो चाक की तरह निरंतर घूमते ही हैं; सफल डॉक्टर तथा सफल वकील को भी शारीरिक विश्राम के लिए अवकाश नहीं है, फिर आत्मिक शांति के लिए सत्संग, सेवा, स्वाध्याय और ध्यान के लिए कहां अवकाश है? कर्मकांड कराने वाले तथा कथा बांचने वाले प्रसिद्ध पंडित और धर्मप्रचार करने वाले

प्रसिद्ध महात्मा अपने आत्मकल्याण के लिए न संध्योपासना कर पाते हैं और न स्वाध्याय और ध्यान। क्योंकि उन्हें अवकाश नहीं। अधिक भाषा, विद्या और शास्त्र पढ़ते-पढ़ते आध्यात्मिक शांति तो छूट ही जाती है, प्रतिभा भी मर जाती है।

ऐसी उन्नति करना जिसमें जीवन दबकर सड़ जाये और दुःख में अंत हो, तो यह पात्र को भरते जाना है जबकि वह केवल भरा ही नहीं है, बाहर बह रहा है। संत लाओत्जे कहते हैं कि भरने के पहले ही रुक जाओ। सब कुछ आत्मसुख के लिए किया जाता है, और जब वही उड़ गया तो उन्नति का क्या अर्थ है? अतएव भरने के पहले रुको।

किसी वस्तु का प्रयोग हो, तो भी उसकी धार बनी रहे, यह लंबे समय तक संभव नहीं। छूरी, चाकू, उस्तुरा को बराबर काम में लेते रहें, तो उनकी धार भोथरी होगी ही। वे लंबे समय तक धारदार नहीं बने रह सकते। बहुत प्यार लेने-देने का चक्कर थोड़े दिन चलता है। किसी से किसी प्रकार का लाभ लेने की बात अधिक दिनों तक नहीं चल सकती। इसलिए सब तरफ अति करने से बचना चाहिए। इच्छाओं और अहंकार को जीतने से ही जीवन की सारी अतियों से बचा जा सकता है। सुखी जीवन जीने की कला यही है कि मध्यवर्ती व्यवहार लेकर चलें।

स्वर्ण और हीरों से भरा महल, कोई उसकी सुरक्षा नहीं कर सकता। धन केवल संग्रह की वस्तु नहीं है, अपितु संग्रह खर्च के लिए है। धन का अच्छा उपयोग बराबर होते रहना धन की सार्थकता है। उपयोग-रहित संग्रह पाप है और वह दुःख देगा।

समृद्ध और सम्मानित होना, फलस्वरूप अहंकारी हो जाना, यही है दुर्भाग्य को आमंत्रित करना। समृद्ध कहते हैं उन्नतिशील को, भाग्यशाली, धनी, संपन्न को और ऐसी स्थिति में वह लोगों से सम्मान पाता ही है। कुछ गुण, पद, अधिकार एवं योग्यता से सम्मान मिलता है। समृद्धि और सम्मान आयें तो कोई बात नहीं, किंतु उसके परिणाम में अहंकारी हो जाना अपने पतन को आमंत्रित करना है।

वैसे हर मनुष्य के सिर पर बढ़ा-चढ़ा अहंकार है। बस, थोड़ी कम-अधिक मात्रा की बात है। धन, विद्या, पद, अधिकार आदि पा जाने पर जहां विवेक नहीं है, अभिमान बढ़ जाता है। सद्गुरु कबीर ने कहा है, “तरने को है दीनता, डूबन को अभिमान।” अर्थात् संसार-सागर से पार जाने का रास्ता विनम्रता है और उसमें डूब मरने का रास्ता अहंकार है। गोस्वामी तुलसीदास जी भी वैराग्य संदीपनी में कहते हैं, “अहंकार की अग्नि में दहत सकल संसार। तेहि से बांचे संत जन, केवल शांति अधार।” श्री पूरण साहेब निर्णयसार में कहते हैं, “गुरुवाई और मान-बड़ाई। ऋद्धि-सिद्धि सब जात नशाई। यामें सकल जगत अरुझाना। काल-कला को मर्म न जाना।” अतएव अहंकार से सदैव बचना चाहिए।

इस अध्याय का अंतिम सूत्र है, कार्य सफल हो जाये, यही पीछे हटने का सही समय है। यही है स्वर्ग का ताओ। किसी कार्य के सफल हो जाने पर उसके कर्ता का जो आत्म-प्रदर्शन का विचार होता है, यह उसके मन का बंधन है। मनुष्य का विवेक यह है कि उसके द्वारा कार्य संपन्न हो जाने पर वह पीछे हट जाये। मैंने यह सब किया, यह बताने की तृष्णा बालपन है। आत्मसंतुष्ट होना स्वर्ग की प्राप्ति है, और इसका ताओ, नियम, विधान है अहंकार-शून्य हो जाना।

चीन में ताओ के संप्रदाय में ऐसी शाखाएं चल पड़ी हैं, जिनकी अनेक बातें विचित्र हैं। कोई तो यहां तक मानता है कि साधक का श्वास जब फेफड़े से न चलकर नाभि से चलने लगता है, तब मानो वह ज्ञान में सिद्ध हो गया और कृतार्थ हो गया। ऐसे लोग श्वास-साधना पर जोर देते हैं और वे मानते हैं कि श्वास पर संयम कर लेने पर मनुष्य बहुत दिन जी सकता है। ऐसी बातों को तूल देने वालों में आज-कल के तार्किक माने जाने वाले विद्वान भी शामिल हैं। परंतु यह सब भ्रम है। स्वर्ग देने वाला ताओ है ऋत, नियम, जो विश्वव्यापी है। इस संदर्भ में है निर्मान और निष्काम हो जाना। इसका फल होता है अविचल, निर्भय शांति। यही है स्वर्ग। स्व में गमन ही स्वर्ग है, अपने में लौट आना, आत्मतृप्त हो जाना स्वर्ग है।

## अपना भविष्य स्वयं संवारे

लेखक—ब्रह्मचारी भूपेन्द्र

दुनिया में कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो अपने भविष्य को उज्ज्वल, प्रशस्त एवं समुन्नत नहीं बनाना चाहता। इतना तो सहज समझा जा सकता है कि प्रायः हर व्यक्ति अपने जीवन को सुखी, संपन्न और शांतिमय बनाने की लालसा रखता है। यह अलग विषय है कि किस व्यक्ति को जीवन में सुख-शांति मिली और कौन अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति की ओर आगे बढ़ा। किसी व्यक्ति के जीवन में ऐसा भी हो सकता है कि पहले की अपेक्षा शांति घटी हो, मन का उद्वेग बढ़ा हो, चिंता, विकलता, असफलता ही हाथ आयी हो। किन्तु इस दिशा में प्रयास तो सभी लोग करते हैं और कर रहे हैं।

यहां जो चर्चा का विषय है वह है अपने भविष्य को समुन्नत एवं उज्ज्वल बनाने का। इस दिशा में सभी लोग सब कुछ करने को सब समय तैयार रहते हैं। आदमी ही नहीं अन्य प्राणी भी अपने भविष्य की सुरक्षा के साथ-साथ उसे सुखद बनाने का प्रयास करते हैं। चींटियां हमेशा इस प्रयास में रहती हैं कि हमें तीन-चार महीने बरसात भर अपने बिल से बाहर निकलना न पड़े। वर्षा ऋतु के समाप्त होने ही वह अपने बिल को मजबूत बनाने तथा खेतों-खलिहानों से अन्न के दाने

→ जब तक जीवन है, सबको अपने और दूसरे के हित के लिए कुछ करना चाहिए। जीवन्मुक्त संत भी कुछ करते हैं। अतएव अनासक्त होकर अपने और दूसरे के लिए कुछ करना उचित है। जो मनुष्य पूर्ण अनासक्त होता है, वह कोई कार्य करके यह नहीं बताना चाहता है कि मैंने किया है। अहंकार से रहित रहना विश्वसत्ता का संदेश है। विश्व-सत्ता बताती है कि यहां किसी का कुछ नहीं है। संसार रंगमंच है। अपना पार्ट अदा करो और रंगमंच से उतर जाओ। काम करो और उससे हटकर खड़े हो जाओ। सबसे निस्पृह, असंग, अहंकारशून्य, इच्छाहीन, आत्मलीन। यही स्वर्ग-सुख है। यही ताओ का पालन है। □

लाकर उसके भंडारण में लग जाती हैं और तब तक लगी रहती हैं जब तक पुनः बारिश का मौसम न आ जाये। यह आपका भी अनुभव होगा कि अन्य जीव-जन्तु बरसात के पानी से भीगते नजर आते हैं किन्तु चींटियां बरसात में अपने बिलों के अंदर राज करती हैं। बया पक्षी बरसात प्रारंभ होने के पहले गरमी में ही अपने घोंसले को इस तरह तैयार कर लेता है कि चाहे जितनी भी वर्षा हो, घोंसले में पानी की एक बूंद भी भीतर प्रवेश नहीं करती। ऐसे ही अन्य प्राणी भी अपने-अपने भविष्य की सुरक्षा के लिए सब समय सक्रिय रहते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए सक्रिय रहता है किन्तु सारा जीवन मेहनत करने के बाद धन तो बढ़ जाता है पर मन में शांति के बजाय अशांति ही आती है। इसके कई कारण हो सकते हैं किन्तु इसका एक कारण यह भी है कि हम अपनी नई पीढ़ी को, अपने ही बच्चों को अच्छे संस्कारों से संस्कारित नहीं कर पा रहे हैं। यही कारण है कि आज अगली पीढ़ी निकम्मी, आलसी व अपने कर्तव्यपालन से विमुख होती दिखाई पड़ रही है। आज की आवश्यकता है उन्हें शुभ संस्कारों से संस्कारित कर सुधारने व संवारने की।

आप अपने भविष्य का सुधार चाहते हैं तो आपका पहला काम यह होना चाहिए कि आप अपने बच्चों के कोमल मन में अच्छे संस्कारों के बीज डालें, उसे सही दिशा दें, उसका सही मार्गदर्शन करें किन्तु सही मार्गदर्शन तभी कर सकते हैं जब आप स्वयं अच्छे ढंग से रहेंगे। आज देखा जाता है कि एक परिवार में रहते हुए भी लोगों के हृदय में आपसी प्रेम, संतोष और सहनशीलता की जगह स्वार्थ, कलह, विवाद, वैमनस्यता ही बढ़ रहे हैं। क्योंकि जीवन-गुजर के साधनों पर ही ध्यान दिया जा रहा है, शुभ संस्कारों पर नहीं। इंसान ने बाह्य जगत को तो खूब प्रकाशित किया है, लेकिन हृदय को, अपने



अंतःकरण को नहीं। प्रकाश होते हुए भी हम अंधेरे में ही हैं।

सभी मनुष्य संसार में बच्चे के रूप में ही जन्म लेते हैं। बच्चा जब थोड़ा बड़ा होने लगता है तो उस परिवार के रहन-सहन, वातावरण, बातचीत करने का तरीका, हाव-भाव इत्यादि का प्रभाव उसके कोमल मन पर तीव्र गति से पड़ने लगता है। ज्यादातर छाप तो मां के क्रियाकलापों की पड़ती है। क्योंकि छोटे बालक का अधिकतम समय प्रायः मां की गोद में ही बीतता है। इससे पहले भी नौ-दस महीने माताएं गर्भ में धारण करती ही हैं। अतः गर्भकाल में माताओं को बहुत संयम से रहना चाहिए तथा सात्विक विचारधारा में अपने मन को लगाना चाहिए, धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन में अपने मन को रमाना चाहिए। माता के बाद वह पिता से बहुत कुछ प्रभावित रहता है। तत्पश्चात अन्य संबंधियों से सीखता है।

भविष्य निर्माण की बहुत-सी कलाएं हैं जिनमें से एक कला है अपनी नयी पीढ़ी को शुभ संस्कारी बनाना। माता-पिता अपने बच्चों को कैसे संस्कारित करें इस विषय में कुछ बिन्दुओं पर विचार किया जा रहा है—

1. गलती किसकी?, 2. नशा से दूर रखें, 3. फैशन का दौर, 4. टी.वी. और मीडिया, 5. गलती न सिखायें, 6. बच्चों को उच्चतम आदर्श सिखाएं, 7. सही जानकारी दें, 8. लड़का-लड़की को बराबर समझें, 9. बच्चों के मन में दहेज का जहर न घोलें, 10. कुसंग से दूर रखें, 11. आज की शिक्षा प्रणाली।

1. **गलती किसकी?**—बच्चों का मन कोरा कागज की भांति होता है। उसमें कुछ भी अंकित किया जा सकता है। जो माता-पिता झूठ बोलते हैं, बात-बात में लड़ते रहते हैं, एक दूसरे से बैरभाव रखते हैं, ईर्ष्या-द्वेष करते हैं, उनके बच्चे भी ऐसे ही हो जाते हैं। इसमें बच्चों की गलती नहीं है, गलती है अभिभावकों की। इसके विपरीत जिन घरों में पति-पत्नी आपस में प्रेम से रहते हैं, पिता-पुत्र, सास-बहू, भाई-भाई एक दूसरे से समता-सलाह के साथ काम करते हैं, कुछ धार्मिक-

आध्यात्मिक चर्चा किया करते हैं, भक्ति भावना बढ़े ऐसा कुछ करते हैं, तो ऐसे घरों में बच्चे भी बड़ों से वैसा ही सीखते हैं और चरित्रवान होते हैं। जो लोग बात-बात में झूठ बोलते हैं, और वही बच्चों को भी सिखाते रहते हैं ऐसे लोग जीवन में धोखा खाते हैं। समाज-परिवार में निन्दा-अपयश के पात्र होते ही हैं साथ ही अपने आप में भी लज्जा का अनुभव करते हैं। आचार्य नरेन्द्र देव जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—जब मैं छोटा बच्चा था, मामा जी के यहां ननिहाल में था। मामा जी भीतर अपने कमरे में बैठे कुछ काम कर रहे थे। एक सज्जन आये और मामा जी का नाम लेकर पूछे कि अमुक घर में हैं। उनकी आवाज सुनकर मामाजी ने मुझसे कहा—बेटा नरेन्द्र, जाओ कह दो कि मामा जी घर में नहीं हैं। मैं उस सज्जन के पास गया और कहा कि मामा जी ने कहा है कि जाओ कह दो कि वे घर में नहीं हैं। उस सज्जन ने कहा—तुम्हारे मामा जी घर में तो हैं न। मैंने कहा—घर में तो हैं पर उन्होंने कहा है कि जाओ कह दो कि घर में नहीं हैं। वे सज्जन हंस पड़े। इस वार्तालाप को मामाजी भीतर से सुन रहे थे और लज्जा से पानी-पानी हो गये और बाहर आकर संकोच करते हुए उस सज्जन से मिले। शायद इसीलिए कहा जाता है कि बालक भगवान का रूप होता है। वह कभी झूठ नहीं बोलता। वे जो देखते, सुनते, करते हैं वही बोलते भी हैं।

आप अपने बच्चों को सही जानकारियां देंगे तो वे सही बनेंगे और यदि गलत बातें सिखायेंगे तो वे गलत ही सीखते चले जायेंगे। एक-एक दुर्गुण आते-आते आदमी दुर्गुणी होता जाता है और एक-एक सद्गुण ग्रहण करते-करते महासद्गुणी होता जाता है। जो व्यक्ति आज एक झूठ बोल सकता है वह कल सौ झूठ बोल सकता है। जो आज एक निर्दोष व्यक्ति की निन्दा कर सकता है वह कल कितनों की निन्दा कर सकता है। अतः आप अपने बच्चों को सही बात बतायें जिससे कि उनके मन-मस्तिष्क पर अच्छा प्रभाव पड़ सके, तथा उसकी तर्क शक्ति का विकास हो सके, साथ ही साथ

उनके मन में सात्विकता, सदाचार, नैतिकता, धार्मिकता, राष्ट्रीयता का विकास होता रहे और उनका जीवन सरलता, सहजता और विनम्रता से परिपूर्ण हो।

अकसर यह सुना जाता है कि आज की संतान निकम्मी व आलसी हो रही है तथा सदाचार, नैतिकता, धार्मिकता से विहीन हो रही है। इन सबके होने में क्या केवल नयी पीढ़ी ही दोषी है? माता-पिता, अभिभावक या समाज का कोई दोष नहीं है? एक व्यक्ति धूम्रपान करता है तो वह कहता है इसमें दूसरों का क्या जाता है, मैं अपनी कमाई से धूम्रपान करता हूँ। जरा सोचें, जो रुपये बच्चों की पढ़ाई में लगते या घर के अन्य किसी काम में लगते, वे क्या व्यर्थ में ही बरबाद नहीं हो रहे हैं? उनके धूम्रपान के धुआँ से पूरे परिवार के लोगों का स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है, इसकी भरपाई कहां से होगी? और मान लो उस गृहपति का स्वास्थ्य अधिक खराब हो गया तो परिवार की कुल आय प्रभावित होगी और यदि कहीं वह व्यक्ति मर जाता है तो उनके बच्चों एवं परिवार की क्या दशा होगी, यह सहज समझा जा सकता है। इसकी भरपाई समाज को और देश की सरकार को भी करना पड़ता है। एक व्यक्ति के अनैतिक व्यवहार का भार पूरे समाज और देश पर पड़ता है। दूसरी तरफ जिन घरों के अभिभावक व्यसनी हैं उनके बच्चे भी वैसे ही होते चले जाते हैं। एक व्यक्ति का स्वभाव बिगड़ता है तो पूरा समाज प्रभावित होता है। और एक व्यक्ति सुधरता है तो पूरा समाज विकास की ओर अग्रसर होता है।

कुछ घरों में माता-पिता बच्चों के साथ बहुत गरमी से पेश आते हैं। पिता सब समय थानेदार बने रहते हैं। जब भी घर में प्रवेश करते हैं बच्चे भय से ऐसे छिप जाते हैं जैसे बिल्ली को देखकर चूहा और कुत्ते को देखकर बिल्ली छिप जाती है। ऐसे घरों के बच्चे प्रायः दबू हो जाते हैं और बड़े हो जाने पर भी उनका भय जाता नहीं है। वे पिता के प्रेम से वंचित रह जाते हैं। इसीलिए उनके मन में पिता के प्रति आदर-प्रेम कैसे रह पायेगा। बच्चों तथा पिता के बीच की दूरियां बढ़ती ही चली जाती हैं। अतः बच्चों के साथ हमदर्दी व प्रेम से

पेश आयें। उनकी शारीरिक व मानसिक परेशानियों को ध्यान में रखकर उसका समाधान करने का प्रयास करते रहना चाहिए।

हर इंसान प्रेम का भूखा होता है। यहां तक कुत्ता, बिल्ली, गाय, भैंस भी प्रेम की भाषा समझते हैं। उन्हें सहलाते-पुचकारते रहो तो वे दुम हिलाते रहते हैं। जिन घरों में माताएं प्रेम से भावपूर्वक स्वयं भोजन बनाती हैं वहां पूरा परिवार सुख का अनुभव करता है। किंतु जहां आधुनिकीकरण हो गया है, भोजन बनाने की मशीन या रोबोट इत्यादि का प्रयोग किया जाता है या कोई नौकरानी भोजन बनाती है वहां भोजन तो बन जाता है, मगर माताओं का जो वात्सल्य भाव, प्रेमभाव उस भोजन के रस में मिलता था उसका अभाव हो जाता है। फलतः बच्चे तथा परिवार के अन्य लोग भी रूखे-सूखे मन वाले हो जाते हैं। और धीरे-धीरे प्रेम-करुणा का स्रोत सूखता चला जाता है। अतः सभी परिवार की माताओं को चाहिए कि वे अपने घर में अपने परिवार के लिए शुद्ध स्नेह भावपूर्वक अपने हाथों से भोजन बनाएं या अपनी देख-रेख में भोजन बनवायें तथा सबको प्रेम से खिलायें ताकि भोजन की ऊर्जा के साथ ही साथ प्रेम-करुणा की अमृत-धारा का भी शरीर-मन में संचार होता रहे।

2. नशा से दूर रहें—आज के विकसित, सुसभ्य और आधुनिक कहलाने वाले समाज में नशा करने वालों की कमी नहीं है। आज पूरे देश की जनसंख्या के लगभग 70 प्रतिशत लोग किसी-न-किसी तरह से नशा सेवन के शिकार हैं। इसका कुप्रभाव छोटे-छोटे बच्चों पर भी पड़ रहा है। यदि माता-पिता लापरवाह रहते हैं, ध्यान नहीं देते हैं तो बच्चे दुर्व्यसन के शिकार बन जाते हैं। जिन घरों में अभिभावक ध्यान देते हैं, बच्चों की पूरी दिनचर्या का अवलोकन करते रहते हैं, उनके बच्चे सात्विक बने रहते हैं। बहुत-से बच्चे ऐसे होते हैं जो घर के ही बड़े-बुजुर्गों से सीखकर नशाखोरी के शिकार हो जाते हैं और कहीं-कहीं तो व्यसन इतना अधिक हो जाता है कि पूरा जीवन ही तबाह हो जाता है। किसी ने सावधान किया है—

नशा नाश कर देगा, फिरोगे दाने-दाने को।  
हाथ में होगा कटोरा, कोई न देगा खाने को।

दुर्व्यसनों से बच्चों को बचाने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि माता-पिता स्वयं अपने-आप को इनके चंगुल से बचाये रखें, तभी वे अपनी संतान को भी नई दिशा दे सकेंगे। पिता यदि शराबी है तो पुत्र के शराबी होने की पूरी सम्भावना है। क्योंकि पिता उसे रोक नहीं पायेगा। ऐसे माहौल में रहकर कुछ ही बच्चे होते हैं जो अपने को संभाल लेते हैं बाकी सब तो उसी रास्ते पर ही चल पड़ते हैं।

बड़े घरानों में प्रायः बच्चों को पालने वाली धाय रखी जाती है। माता-पिता सुबह से ही बाहर आफिस या दुकान अपने काम से चले जाते हैं। धाय या नौकरानी ही बच्चों को संभालने वाली होती है। बच्चे बार-बार रोने लगते हैं या कुछ मांग करते रहते हैं इससे परेशान होकर धाय या नौकरानी हल्के नशे की गोली या अफीम का छोटा सा टुकड़ा बच्चे के मुंह में डाल देती है, बच्चा चुसने लगता है और धीरे-धीरे उसे नींद आ जाती है। जब शाम को माता-पिता के आने का समय होता है इससे पहले ही जगाकर, धाय या नौकरानी बच्चे के हाथ-पैर धोकर साफ कपड़े पहना देती है और उसका मन बहलाने लगती है। माता-पिता आते हैं अपने बच्चों को खेलते हुए देखकर खुश होते हैं। ऐसा निरंतर होने से बच्चों में बचपन से ही नशे की लत लग जाती है। अतः सावधानी बरतें। कितने बूढ़ों को देखा जाता है कि बच्चों को गोद में लिए रहेंगे और उनके ही सामने तालियां बजाकर, रगड़कर तंबाकू खाते रहते हैं तथा बच्चों को भी सिखाते (खिलाते) रहते हैं। सावधान करने पर बहाना करते हैं कि बुढ़ापा के अकेलेपन को झेलने के लिए यही एक साधन है। आप अपने भविष्य को सुरक्षित रखना चाहते हैं तो अपनी संतान को शुभ संस्कारों से संस्कारित करते रहें। नशा से स्वयं बचें और आने वाली पीढ़ी को भी नशा मुक्त बनायें।

शराब का सेवन करना अपनी ही कमाई के रुपये देकर अपना ही सिर फोड़वाना है। दिनभर की मेहनत

के रुपयों से नशीली वस्तुएं खरीदी जाती हैं और अपना ही दिमाग खराब किया जाता है। लोग कहते हैं कि नशा सेवन से जीवन में मौज आता है। नशा सेवन से मौज तो नहीं आता मगर मौत जरूर आ जाती है। नशा खाकर लोग गंदी नाली के कीचड़ में लोटते हैं यही उनका मौज है। जीवन का असली मौज है मन के विश्राम में, मन की शांति में। सब तरफ से लौटकर मन जब अपने में सिमट जाता है, सारी इच्छा-कामना का त्याग हो जाता है, इन्द्रियां जब अपने वश में रहती हैं तब जीवन में सच्चा आनन्द आता है। इसलिए स्वयं तो सभी नशा-दुर्व्यसन से दूर रहें ही अपने बच्चों को, भावी पीढ़ी को भी नशा-दुर्व्यसन से दूर रखें तभी आपका एवं उनका भविष्य ठीक रह पायेगा।

3. फैशन का दौर—सब समय में अपने-अपने जमाने के अनुसार फैशन रहा है, किंतु आज के सुसभ्य कहलाने वाले समाज में फैशन का कुछ विशेष ही दौर चला है। फैशन के नाम पर आज बड़ी-बड़ी प्रतियोगिताएं आयोजित होती रहती हैं। इस अन्धी दौड़ में यदि किसी का मन नहीं ललचाता है, तो उसे धन्यवाद ही देना चाहिए। माता-पिता को चाहिए कि वे स्वयं सादगीपूर्ण जीवन जीयें। अपना पहनावा सहज और सरल रखें और साथ-साथ अपने बाल-गोपालों को भी इस बात की शिक्षा देते रहें। हमारी भारतीयता की पहचान रही है “सादा जीवन उच्च विचार”। इसे ध्यान में रखें और अपने जीवन में उतारने का प्रयास करें। कपड़े केवल तन ढकने के लिए है न कि फैशन के लिए। इससे ठंडी-गर्मी से शरीर की रक्षा होती है।

आज फैशन के दौर में पड़कर अपने आप को खोते चले जा रहे हैं। कितने रईस कहलाने वाले लोग हैं जो अकेले इतने वस्त्रों का उपयोग करते हैं जिनसे अनेक लोगों का काम चल जाये। यह एक प्रकार से समाज का शोषण करना है। औरों का हक मारना है। यदि इसे गरीबों में बांट देते तो कितने भाई-बहनों की सेवा होती और समाज विकसित होता। दूसरी तरफ कितने गरीब हैं जो दिन भर मेहनत करते हैं तब कहीं अपना पेट भर

पाते हैं। वे भी देखादेखी, अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा आधुनिक फैशनेबुल वस्त्रों तथा चीजों को खरीदने में लगा देते हैं। आज शहरों की गलियों में, सड़कों पर तथा बाजारों में भी अर्ध-नग्न, शरीर से चिपके हुए छिद्र युक्त जालीदार कपड़ों में नवयुवतियों को देखा जा सकता है। कहा जाता है कि अंग्रेज सरकार के जमाने में गरीबी के कारण भारतीय स्त्रियों के शरीर में कपड़ों की कमी रहती थी परन्तु आज के सुसभ्य समाज में आधुनिकता के नाम पर जो नग्नता देखने को मिलती है उसे ढकने के लिए संसार के किसी भी सरकार के पास कपड़े नहीं हैं।

एक समय था जब पूरे विश्व में भारतीय सभ्यता की एक अलग पहचान एवं गूँज थी। परन्तु वह बात अब केवल कहने और सुनने की रह गई है। आज फैशन का ऐसा दौर चल पड़ा है कि सिर से पैर तक पूरे शरीर को ढकने वाली महिलाएं अब अपने सिर तो क्या सीना को भी नहीं ढक पा रही हैं। इन्हीं कारणों से आज समाज में अनाचार और दुराचार को बढ़ावा मिल रहा है। यह बात नहीं है कि इसमें केवल स्त्री समाज ही दोषी है। बल्कि पूरे समाज का दोष है। हम यदि अपने बच्चों को इस बारे में समझाते हैं और स्वयं सादगीपूर्ण जीवन जीते हैं तो हमारी अगली पीढ़ी जरूर संस्कारित होगी और उसके उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की जा सकेगी।

लोग आधुनिकता के रंग में इतने रंग गये हैं कि सफाई-शुद्धता का भी ध्यान नहीं रखा जाता है। भोजन के वक्त भी लोग हाथ-पैर, मुँह धोना नहीं चाहते। बाहर से जैसे ही आये वैसे ही खाने के लिए बैठ गये न मोजे-जूते उतारने की जरूरत है और न ही हाथ-मुँह धोने की। ऐसा भोजन जब हम रोज करते हैं तो उपहारस्वरूप बीमारी भी जल्दी पाते हैं। क्योंकि भोजन के साथ-साथ गन्दगी भी हमारे पेट में निरंतर प्रवेश कर रही है।

आप सहज, शुद्ध, सात्विक और शाकाहारी भोजन करेंगे तथा सादा सरल वस्त्र पहनेंगे तो लोग आपको

छोटा मानेंगे या आप गरीब समझे जायेंगे ऐसी बात नहीं है। आप यदि सादगीपूर्ण जीवन जीते हैं, “सादा जीवन उच्च विचार” को आचरित करते हैं तो आपका महत्त्व परिवार-समाज में घटता नहीं बल्कि और भी बढ़ता चला जाता है। इससे आप व्यर्थ खर्च से बच जाते हैं, राष्ट्र की संपत्ति को बचाते हैं, साथ ही लोगों की नजरों में प्रतिष्ठित होते जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व का एक अत्यंत प्रेरक प्रसंग है—प्रधानमंत्री माननीय डॉ. मनमोहन सिंह जी की पत्नी श्रीमती गुरुबचन कौर एक सेमीनार में गई हुई थीं। साधारण-सी वेशभूषा। वह सभा उच्च तथा बड़े कहलाने वाले लोगों की थी। एक सजीधजी महिला ने श्रीमती कौर के पास आकर कुछ चर्चा आरम्भ की। चर्चा के दौरान श्रीमती कौर ने उस महिला से पूछा—आपके पति क्या करते हैं? उसने बड़े रोब से कहा—मेरे पति आई.ए.एस. अफसर हैं। मैं एक बड़े अफसर की पत्नी हूँ। फिर उस महिला ने लौटकर उनसे पूछा—आपके पति क्या करते हैं? उन्होंने सहज भाव से उत्तर दिया—मेरे पति एक सरकारी आफिस में काम करते हैं। वह महिला फिर बोली—किस आफिस में और क्या काम करते हैं? श्रीमती कौर ने सहजता से जवाब दिया—प्रधानमंत्री के आफिस में काम करते हैं। वह महिला—क्या वे हेड क्लर्क हैं? श्रीमती कौर—नहीं। वह महिला—क्या वे प्रधानमंत्री के सलाहकार हैं। श्रीमती कौर—नहीं। क्या वे प्रधानमंत्री के सेक्रेटरी हैं? श्रीमती कौर—नहीं। उस महिला ने झुंझलाकर व उत्सुकता से पूछा—आखिर वे क्या हैं और क्या करते हैं? श्रीमती कौर ने अत्यंत कोमल स्वर में कहा—वे प्रधानमंत्री हैं। वह महिला पानी-पानी हो गई और शर्म से झुक गई। तो वेशभूषा का उतना महत्त्व नहीं है। महत्त्व है सदाचार, नैतिकता और चरित्र का। महान-से-महान पुरुष भी साधारण वेश में हो सकते हैं तथा क्रूर से क्रूर तथा गरीब आदमी भी फैशनेबुल हो सकता है। अतः आप अपने को जितना सहज और सरल रखेंगे उतना ही परिवार के लिए, बच्चों के लिए तथा पूरे समाज और देश के विकास के लिए आपका बड़ा योगदान होगा।

—क्रमशः

# बी जक चिंतन

## हरिबाजी से हटकर आत्मा राम में रमो

शब्द-78

अब हम जानिया हो, हरि बाजी को खेल]  
डंक बजाय देखाय तमाशा, बहुरी लेत सकेल]  
हरि बाजी सुर नर मुनि जहँड़े, माया चाटक लाया]  
घर में डारि सकल भरमाया, हृदया ज्ञान न आया]  
बाजी झूठ बाजीगर साँचा, साधुन की मति ऐसी]  
कहहिं कबीर जिन जैसी समुझी, ताकी गति भइ तैसी]

**शब्दार्थ**—हरिबाजी=ईश्वरीय धोखा। खेल=तमाशा। डंक=डंका, नगाड़ा, धौंसा। डंक बजाय=जोर-शोर से कहकर सबको सुनाना। बहुरी=पुनः। जहँड़े=ठगा गये, हानि उठाये। चाटक लाया=प्रिय वचन कहकर ठगना, चाहना लगा देना। घर में डारि=अपने वश में कर लेना। बाजी=धोखा, तमाशा। बाजीगर=ईश्वर। मति=समझ। गति=स्थिति, दशा, हालत।

**भावार्थ**—अब मैंने ईश्वरीय धोखा का तमाशा जान लिया है। 1] बाजीगर डंका बजाकर लोगों को इकट्ठा करता है और तमाशा दिखाकर फिर समेट लेता है तथा भिक्षा में मिले पैसे-अन्न आदि को लेकर चल देता है, कहते हैं ईश्वर इसी प्रकार सृष्टि का तमाशा फैलाकर, फिर समेट लेता है। पता नहीं वह जनता से कौन-सी भीख चाहता है! 2] इस ईश्वरीय धोखे में सतोगुणी, रजोगुणी एवं मननशील-मुनिजन भी ठगा गये हैं। इन्हें मीठे वचन सुनाकर ठग लिया गया है। माया ने इनके मन में आत्मभिन्न ईश्वर पाने की चाहना उत्पन्न कर दी है और सब को अपने फंदे में डालकर भ्रमित कर दिया है तथा अपने अधीन बना लिया है। इसीलिए

लोगों के हृदय में सच्चा ज्ञान उदित नहीं हुआ। 3-4] नाना मत के साधुओं की समझ यह है कि बाजीगर ईश्वर तो सच्चा है, परन्तु उसकी बाजीगरी, उसका बनाया तमाशा जगत झूठा है। 5] कबीर साहेब कहते हैं जिन्होंने जैसा समझा उनकी वैसी गति हुई। 6]

**व्याख्या**—‘बाजी’ फारसी भाषा का शब्द है। इसके अर्थ हैं खेल, तमाशा, करतब, शर्त, दावं, बारी, समय, धोखा तथा चालाकी। यहां खेल तथा धोखा दो ही शब्द उपयुक्त हैं। खेल इस पंक्ति में आगे आ गया है, इसलिए हरिबाजी का अर्थ धोखा है जिसका भाव अगली पंक्तियों में विस्तृत है जिसमें सुर, नर तथा मुनिजन का ठगा जाना बताया गया है। साहेब कहते हैं “अब हम जानिया हो, हरि बाजी को खेल।” अर्थात् ईश्वरीय धोखा का खेल हमने जान लिया है। हरि तो हृदय-भीतर आत्मदेव है, परन्तु लोगों को यह धोखा है कि वह कहीं बाहर है और वही पूरे संसार को बनाता-बिगाड़ता रहता है। लोगों ने हरि को बाजीगर बना डाला है, जो धन पाने के लिए तमाशा दिखाता है। बाजीगर छल-कपटपूर्वक अपने हाथ की सफाई, बात की सफाई, वस्तु की बनावट, दवाई आदि से कुछ का कुछ जैसा दिखाता है। यह सारे छल-कपटपूर्ण तमाशा दिखाने के फल में वह पैसे-अन्न आदि पाता है। भावुक भक्तों ने ईश्वर को भी बाजीगर बना डाला है। परन्तु ईश्वर किस स्वार्थ के लिए छल-कपट करता है?

बाजीगर अपने तमाशे दिखाकर जनता का मनोरंजन करता है और फल में धन पाता है। कहा जाता है कि ईश्वर जीवों पर करुणा कर सृष्टि बनाता है। प्रश्न होता है कि जब सृष्टि थी ही नहीं तब जीव भी नहीं थे, फिर ईश्वर ने करुणा किस पर की? यदि सृष्टि होने पर जीव दुखी हुए तब ईश्वर ने करुणा की, तो जीव के दुख का कारण तो ईश्वर की सृष्टि ही हुई। तो यह बताना चाहिए कि करुणा से सृष्टि होती है या सृष्टि होने पर करुणा? “करुणया सृष्टिः सृष्ट्या च कारुण्यमिति।”<sup>1</sup>

1- माध्वाचार्य कृत सर्वदर्शन संग्रह, सांख्य दर्शन, 10।

यह अनन्त विश्व-ब्रह्माण्ड अपने अंतर्निहित गुण-धर्मों से अनादि-अनन्त है, परन्तु भावुक-भक्तों ने इसका रचयिता एक बाजीगर-ईश्वर खड़ा कर दिया है जो सत्य को समझने में महा उलझन है। इस बाजीगर की भावुकतापूर्ण अवधारणा में बड़े-बड़े विद्वानों की बुद्धि भी ठगा गयी है। इसी हरिबाजी में, इसी ईश्वरीय वंचना में देवता, मनुष्य एवं ऋषि-मुनि सब ठगे गये हैं। सुर, नर, मुनि सब मनुष्य ही हैं। मनुष्य से अलग न देवता हैं और न मुनि हैं। तात्पर्य यह है कि संसार के छोटे-बड़े कहलाने वाले सभी लोग इस भावुकतापूर्ण वाणी-जाल में उलझ गये हैं कि जगत एक तमाशा है, एक धोखा है और इसका फैलाने वाला बाजीगर ईश्वर है। यह मनुष्य के मन की भ्रांति है। यही माया है। इसी ने मनुष्य के मन में किसी बाहरी ईश्वर से मिलने के लिए एक प्रबल चाहना पैदा कर दी है। इस मन की माया ने अपने फंदे में डालकर सबको भ्रमा दिया है। “घर में डारि सकल भरमाया” घर भ्रांति का घेरा है, भ्रांति का फंदा है। उसी में पड़कर सब भ्रमित हैं। इसीलिए ‘हृदया ज्ञान न आया’ मनुष्य के हृदय में सच्चा ज्ञान उत्पन्न नहीं होता कि ईश्वर बाहर नहीं, हृदय के भीतर चेतना के रूप में है। बाहर है तो वह भी मेरी आत्मा-जैसा सजाति है। मनुष्य जब तक ईश्वर को बाजीगर मानता रहेगा और उसे बाहर खोजता रहेगा, तब तक उसे सच्चा ज्ञान होगा ही नहीं। ईश्वर यदि धोखे का जाल फैलाकर हमें भ्रम में डालता है तो ऐसे ईश्वर से सावधान रहना पड़ेगा। हरिबाजी में ही तो सुर, नर, मुनि जहंडे हैं। तो कौन समझदार अपने आप को जहंडाना एवं ठगाना चाहेगा।

साहेब कहते हैं कि नाना मत के साधुओं की यही समझ है कि ईश्वर का तमाशा तो झूठा है, लेकिन वह स्वयं सच्चा है। प्रश्न होता है कि जब वह सच्चा है तब झुठाई एवं धोखे का काम क्यों करता है? वह माया का जाल बिछाकर सबको क्यों जहंडाता है, सबको क्यों ठगता है? जिसमें सच्चाई होती है उसकी सारी क्रियाएं लोगों के लिए सच्चे ज्ञान एवं शांति प्रदायक होती हैं।

जो सच्चा होता है वह बाजीगरी नहीं करता। सच्चा तो उलझे हुए को सुलझाता है। साहेब कहते हैं कि जो जैसा समझता है वैसी उसकी दशा होती है। जो बाजीगर को ही सच्चा मानता है वह उसके धोखे में पड़ेगा। परन्तु जिसने समझ लिया कि यह सब मन का खेल है, बाजीगर माना हुआ ईश्वर ही मन का खेल है, वह काल्पनिक ईश्वर में न उलझकर अपने आत्मदेव की उपासना करता है जो सच्चा ईश्वर है। ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा-जैसे सारे शब्दों की चरितार्थता व्यक्ति की अपनी आत्मा में ही है। अतएव हमें किसी धोखेबाज बाजीगर के पीछे न लगकर अपने आत्मदेव की उपासना करनी चाहिए, अपने चेतनस्वरूप में रमना चाहिए। निजस्वरूप आत्मराम ही हमारा परम उपासनीय एवं विश्रामस्थल है। इस भाव को समझने के लिए बीजक का 79वां शब्द मनन करने योग्य है।

## शत कोटि तुम्हारा अभिनन्दन

रचयिता—श्री जीवछ झा

हे गुरुवर! तुझको कोटि नमन।  
शत कोटि तुम्हारा अभिनन्दन।

हम क्षमा करें, यह शक्ति रहे,  
सब श्रेष्ठ जनों में भक्ति रहे।  
हो सहज-शांत मन युक्ति कहो,  
हो भवबंधन से मुक्ति कहो।  
अब रहे नहीं जग में क्रंदन,  
हे गुरुवर! तुझको कोटि नमन।

मुझको गीता का ज्ञान मिले,  
बाइबिल, गुरुग्रन्थ, कुरान मिले।  
हर पल मुझको सदज्ञान मिले,  
धारणा, धर्म और ध्यान मिले।  
सब जीवों में हो निज दर्शन,  
हे गुरुवर! तुझको कोटि नमन।

## ‘लेना’ ही, मानव की भूख क्यों?

लेखक—श्री ललित गर्ग

कबीर जी की पंक्तियां हैं कि—

माटी कहे कुम्हार से तू क्यों रौंदे मोए,

इक दिन ऐसा आयेगा मैं रौंदूंगी तोए।

आज जिसे देखो अपनी ताकत का गलत इस्तेमाल करता हुआ दिखाई दे रहा है। चाहे राजनीति का क्षेत्र हो या समाज या फिर परिवार का, व्यक्ति चाहे छोटा हो या बड़ा—जहां थोड़ी-सी ताकत आई, समृद्धि आई, अधिकार आए, सत्ता मिली नहीं कि उसका गलत इस्तेमाल शुरू कर देते हैं। व्यक्ति यह नहीं सोचता कि वक्त कभी भी एक जैसा नहीं होता, वक्त बदलते देर नहीं लगती। आज जिनको दबाया या शोषित किया जा रहा है, कल वे ही लोग ताकतवर बनकर आपसे बदला लेने की स्थिति में आ जायेंगे। इसलिए जरूरी है कि हर इंसान अच्छे कर्मों और अच्छाई को हर पल जीये, चाहे वह कितना ही ताकतवर और समृद्ध क्यों न हो। क्या कारण है कि एक मानव ही, अपने स्वार्थ और अपने अहंकार के कारण जीवन के शाश्वत मूल्यों को भूल रहा है। अपने स्वार्थ के लिए, अपने सुख के लिए, दूसरों को हेय समझकर, अपना स्वार्थ सिद्ध करना, अपनी ताकत का दुरुपयोग करना पाप कहलाता है। इंसानों का ही नहीं, हम तो प्रकृति, जीव-जन्तु तक का शोषण कर अपने आप को धार्मिक, परोपकारी और नेक इंसान मानते हैं। यह कैसी इंसानियत है? यह कैसी धार्मिकता है? यह कैसी परोपकार भावना है? केवल—‘लेना’ ही, मानव की भूख क्यों? ‘देने’ की भावना का हास मानव को आज पतन की ओर गिरा रहा है। इसी से हिंसा पनप रही है और समाज एवं देश में अराजकता की स्थिति बनी हुई है।

बछड़े के मुंह का दूध छीनकर अपना पेट भरना पाप नहीं तो क्या है? शहद की मिठास का रसास्वादन करने के लिए, मधुमक्खियों का परिश्रम निचोड़ना, पाप नहीं तो क्या है? प्रकृति, मानव की हर आवश्यकता की पूर्ति स्वयं करती है। गन्ने के खेत, गन्ने का रस, नदियों

का पानी, फलों से लदे ये वृक्ष, कपास के फूल—ये सब क्या हैं? प्रकृति की उपकार भावना! हमने प्रकृति से क्या सीखा? फिर यह लालसा, यह लिप्सा, नवीनता की कामना और शारीरिक वासना के लिए सांसारिक प्रपंच क्यों? नश्वर शरीर के लिए, ये आडम्बर क्यों? धन की लालसा में प्रकृति का व्यापार क्यों? इंसान होकर इंसान को इंसान न समझना और उसका शोषण करना क्या है?

इंसान को इंसान समझना और उसके साथ इंसानियत का व्यवहार करना ही धर्म का वास्तविक पालन है और यही पुण्य कहलाता है। पूजा-पाठ, ध्यान, कर्म, प्रभुसेवा, ईश्वरभक्ति, दान, दया कर्मों द्वारा पुण्य का प्रपंच रचने वालों को ध्यान रखना चाहिए, ये पुण्य कर्म साधन मात्र हैं, वास्तविक पुण्य अर्जन नहीं। वास्तविक पुण्य अर्जन है प्राणीमात्र को अपने जैसा समझ कर उन पर दया, उनकी आवश्यकताओं का अध्ययन कर, उनकी सेवा करना।

एक श्रीमंत के घर नौकर-चाकरों का उसके आश्रित रह कर सेवा करना और श्रीमंत का उनसे सेवा करवाना, अपने स्वार्थों के पालन हेतु अपने सुख के लिए दूसरों को पराधीन रखना पाप है, पुण्य नहीं। वे आपकी सेवा करते हैं, आप उन्हें तनख्वाह देते हैं। उपकार नहीं करते। भूखों को भोजन देते समय यदि यह विचार आ गया कि आप धर्म कर रहे हैं, या पुण्य कमा रहे हैं तो वह पुण्य नहीं आडम्बर कहलायेगा। किसी भी कृत्य के पीछे भावना की परछाई, उस कृत्य को पुण्य या पाप में बदल देती है। जीवमात्र का कल्याण पुण्य है।

सचमुच इच्छाओं के विस्तार के युग में पुण्य की इस चेतना और संवेदना को घर-घर में पहुंचाना ‘दीये और तूफान की जंग’ जैसी बात लगती है पर यह जंग हमें जीतनी होगी। इस विचार के साथ घरों में ही नहीं पहुंचना है, उनके दिलों को भी छूना होगा। उनकी

संवेदना को भी जगाना होगा। पुण्य की यह चेतना और संवेदना संतुलन का आधार है, विकास का मंत्र है। प्रकृति का कण-कण इस सूत्र से गुंथा हुआ है। यदि पेड़, पौधे, वृक्ष, लताएं, धूप, हवा, पानी और खाद लेते हैं तो फूल, फल, अनाज और खुशबू देते हैं। नदी, नाले पहाड़ों से, बादलों से, पानी लेते हैं तो धरती को सींचन भी देते हैं। प्रकृति में संतुलन की आवश्यकता है तो फिर व्यक्ति में और समाज में क्यों नहीं? पर अफसोस! हम इस बात को भूल गये हैं इसलिए व्यक्ति और समाज दोनों ही असंतुलित बन गये हैं। मैं, मुझे और मेरा (आई, मी एंड माइन) की सभ्यता ने मनुष्य को स्वार्थी बना दिया है, इसलिए वह जो कुछ अर्जित करता है अपने ऊपर ही उड़ेल लेना चाहता है। प्रकृति ने दिन में उजाला और रात में अंधेरा फैलाया है पर हमारे जीवन में तो रात और दिन आसक्ति का, मूर्च्छा का, ममत्व का अंधेरा ही अंधेरा छाया है। सोते, जागते, उठते, बैठते पैसा ही पैसा पसरा हुआ नजर आता है, समृद्धि ही समृद्धि, सत्ता ही सत्ता, अधिकार ही अधिकार चाहिए। जीवन के टेपरिकॉर्डर पर एक ही धुन बजती रहती है— 'पैसे, पैसे, पैसे, मिले चाहे जैसे'। यानि पैसा ही जीवन का सुर, ताल और राग बन गया है, पुण्य की चेतना एवं संवेदना गायब है।

जीवन को सम्मानपूर्वक जीने के लिए, जीवन को शांतिपूर्वक जीने के लिए पैसे की आवश्यकता व पैसे की उपयोगिता को नकारा कैसे जा सकता है? आचार्य तुलसी ने लिखा है—गरीबी गौरव गंवाना, अमीरी अभिशाप है, मांगकर खाना मान खोना, मानसिक संताप है। आचार्य महाप्रज्ञ ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है— अर्थ समर्थ भी है अर्थ असमर्थ भी है। पैसे का अभाव और पैसे का प्रभाव दोनों ही हिंसा फैलाते हैं। दोनों के संतुलन से ही स्वस्थ व अहिंसक समाज का निर्माण संभव हो सकता है। अर्जन के साथ विसर्जन संतुलित जीवन जीने की कला है। भोगी के साथ उपयोगी बनने की प्रेरणा है।

सिक्के के दो पहलुओं की तरह पुण्य की चेतना एवं संवेदना के भी दो महत्त्वपूर्ण पहलू हैं—

आध्यात्मिक पहलू और सामाजिक पहलू। दोनों का अपना-अपना स्थान है। अपना-अपना मूल्य है। जैसे खेती अनाज की करते हैं पर तुड़ी उसके साथ स्वतः मिल जाती है, वैसे ही हम समझें कि पुण्य करते समय अर्थ से, पदार्थ से जो हमारा मोह छूटता है, वह शुद्ध आध्यात्मिक लाभ यानि पुण्य की प्राप्ति है। पुण्य का यह दर्शन इस कहावत को चरितार्थ करता है 'आम के आम गुठली के दाम'। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज से सुख-सुविधा, सुरक्षा, सहायता लेता है तो पुनः उसे लौटाना भी उसका सामाजिक दायित्व है। अपनी शक्ति का, अपनी समृद्धि का और अपनी ताकत का उपयोग करते हुए अहंकार न आये, यह अपेक्षित है। हारे नहीं जब हौसले, तो कम हुए हैं फासले। आगे बढ़ने के लिए, बस मन बदलना चाहिए।

(साभार, दैनिक देशबन्धु, 4 अगस्त, 2013)

## गुरु वंदना

रचयिता—ज्ञानदास

हे गुरु आपकी दया बिना, नहीं जीव का कल्याण।  
पड़ा रहूँ चरणों में सदा, जब तक तन में प्राण।  
गुरुदेव इस दास को, रखिये शरण लगाय।  
बच जाऊँ भवचक्र से, दूजा नाहिं उपाय।  
'अभिलाष' गुरु इस दास को, धन दीन्हें अनमोल।  
खोज रहे ज्ञानी-मुनि सो, ज्ञान मिला बिन मोल।  
सद्गुरु दीन दयाल प्रभु, अरजी सुनिये मोर।  
शरण दीजिये चरणों में, विनती करीं कर जोर।  
गुरु से बड़ा न कोई जग में, नमन करूँ त्रैबार।  
भवबंधन से छुड़ाने वाले, किया सदा उपकार।  
गुरुदेव की कृपा का, ऋणी है यह दास।  
चाहना एक और है, रहूँ आपके पास।  
भवसागर पार लगाने वाले, गुरुदेव अभिलाष।  
मुक्ति की मुझको अभिलाषा, पूरी करिये आश।



# शंका समाधान

प्रश्न—बनारसी पंडित, जमुई, बिहार

1. प्रश्न—मन तथा चित्त में क्या अंतर है?

उत्तर—शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध ये पांच विषय हैं, इनका ज्ञान क्रमशः कान, चाम, आंख, जीभ एवं नाक के द्वारा होता है। इन्हें ज्ञानेंद्रिय कहा जाता है। ये ज्ञानेंद्रियां बाह्यकरण हैं अर्थात् बाहरी विषयों को जानने के साधन। किंतु इन ज्ञानेंद्रियों से सुख-दुख का ज्ञान नहीं होता। इनका ज्ञान जिससे होता है उसे अंतःकरण कहते हैं। अंतःकरण अर्थात् भीतरी साधन। कार्य-भेद से इस अंतःकरण के चार नाम हैं—मन, चित्त, बुद्धि एवं अहंकार। सोचने-संकल्प-विकल्प करने से मन; खोजने-अनुसंधान करने से चित्त; निर्णय करने से बुद्धि एवं स्वीकार करने से अहंकार। इस कार्य भेद के कारण मन एवं चित्त अलग-अलग हैं, किंतु सामान्य रूप से मन एवं चित्त दोनों का एक ही अर्थ है। दोनों में कोई अंतर नहीं है। योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने अंतःकरण सामान्य को चित्त कहा है और योग द्वारा चित्त का निरोध करने को कहा है। अन्य अनेक संत चित्त शब्द का प्रयोग न कर मन शब्द का प्रयोग करते हैं। कुछ लोग चित्तनिरोध की बात कहते हैं तो कुछ लोग मननिरोध की बात कहते हैं। दोनों का अर्थ एक ही है और दोनों के फल भी एक है।

निष्कर्षतः सामान्य रूप से मन और चित्त में कोई अंतर नहीं है, अंतर है तो दार्शनिक स्तर पर। यह प्रयोगकर्ता पर निर्भर है कि वह किस शब्द का कहां पर किस अर्थ में प्रयोग करता है।

2. प्रश्न—ध्यान कहां लगाना है? भृकुटि में या हृदय में?

उत्तर—प्रारंभिक साधना में मन को किसी एक बिन्दु पर एकाग्र करने के लिए भृकुटि, हृदय, नासिकाग्र, कंठ आदि कहीं पर भी लगाया जा सकता है। इनके अतिरिक्त ज्योति, नाद, श्वास, बिन्दु, इष्ट या गुरु के चित्र-मूर्ति पर भी मन को एकाग्र किया जा सकता है, परंतु यह सब ध्यान नहीं है। एक खूंटा-आलंबन-

आधार है जिसके सहारे मन को एकाग्र करने का अभ्यास किया जाता है। जिस साधक की जैसी मानसिकता और योग्यता होती है वह उस साधन का आधार लेकर अपने मन को एकाग्र करने का अभ्यास करता है।

ध्यान तो है कुछ न करना। कुछ न करने का अर्थ है मन का कुछ न सोचना, संकल्प-विकल्प रहित निर्विचार हो जाना। इसीलिए कहा गया है—ध्यानं निर्विषयं मनः। परंतु यह तो मंजिल है, अंतिम स्थिति, सिद्धि है। यहां तक पहुंचने के लिए अनेक स्थितियों से गुजरना पड़ता है। जिसमें प्रारंभिक स्थिति में उक्त आलंबनों का सहारा लेना पड़ता है। किंतु भृकुटी, हृदय, ज्योति, नाद, श्वास में मन को ठहराना ध्यान नहीं है। ध्यान के सहायक अंग हैं। अतएव मन को कहीं लगाना ध्यान नहीं है, किंतु मन को कहीं न लगाना ध्यान है।

प्रश्न—त्रिलोक नारायण, नागपुर, महाराष्ट्र

1. प्रश्न—आपके यहां सत्संग में किसी महापुरुष का नाम लेकर जय नहीं बोलाया जाता किंतु सद्गुरुदेव की जय कहा जाता है। ऐसा क्यों?

उत्तर—हर परंपरा का अपना एक विशेष विधि-विधान एवं कर्मकाण्ड होता है। एक सिस्टम होता है। इसी प्रकार कबीरपंथ-पारख सिद्धांत का भी अपना एक सिस्टम है। पारख सिद्धांत अपना मूल पुरुष सद्गुरु कबीर को मानता है, परंतु पारखी संत सद्गुरु कबीर की जय न कहकर सद्गुरुदेव की जय कहता है। पारखी संत अपवादस्वरूप ही सद्गुरु कबीर की जय कहते हैं।

जब हम किसी एक महापुरुष का नाम लेकर जय बोलते हैं तब वह एकदेशी होता है और एक व्यक्ति विशेष तक ही सीमित रह जाता है, किंतु जब हम सद्गुरुदेव की जय कहते हैं तब वह किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं रहता किंतु उसमें दुनिया के सभी सद्गुरुओं का समावेश हो जाता है, चाहे वे सद्गुरु वर्तमान के हों या भूतकाल के। सद्गुरु कोई व्यक्ति विशेष नहीं है किंतु सद्गुरु एक पद, दशा एवं स्थिति है। उस दशा-स्थिति की योग्यता-रहनि जिस किसी में आ जाये वह सद्गुरु है।

कोई भी महापुरुष किसी एक परंपरा विशेष में ही विशेष मान्य होते हैं, अन्य परंपरा में नहीं, किन्तु गुरु-सद्गुरु तो हर परंपरा-संप्रदाय में मान्य हैं। इसलिए सद्गुरु देव की जय कहना सर्वांगीण है और यह सबको मान्य है। चाहे ईश्वरवादी मत हो चाहे निरीश्वरवादी सद्गुरु की महत्ता हर जगह है। इसलिए पारखी संत न किसी भगवान की जय कहते हैं और न किसी महापुरुष की जय कहते हैं, किन्तु सर्वमान्य सद्गुरु की जय कहते हैं।

**2. प्रश्न**—कहा जाता है कि हर जीव को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है और जो जैसा करता है उसे वैसा फल मिलता है। अच्छे को अच्छा, बुरे को बुरा। तब किसी दुखी-पीड़ित जीव की सेवा करना धर्म कैसे! क्या उसकी सेवा करना ईश्वर या प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करना नहीं है?

**उत्तर**—यह तो ठीक है कि हर जीव को अपने किये कर्मों का फल मिलता है और जो जैसा करता है उसे वैसा ही मिलता है। अब आप सोचें, आपको अपने किये बुरे कर्मों का फल रोग, अपंगता, गरीबी किसी रूप में मिल रहा है और आप दुखी, पीड़ित, असहाय, लाचार हैं, तो आप क्या चाहेंगे। यही न कि लोग आपकी सेवा-सहायता करें, आपके साथ सहानुभूति-पूर्वक बात-व्यवहार करें। फिर यही बात आप दूसरों के लिए क्यों नहीं सोचते। आप अपने लिए सेवा, सहायता, सुख चाहते हैं, तो यही दूसरों को दें। जो आप देंगे वही लौटकर आपको मिलेगा। हम-आप मनुष्य हैं और मनुष्य का कर्तव्य है समय-शक्ति अनुसार दूसरों की सेवा-सहायता करना। दूसरों को दीन, दुखी, लाचार, विपन्न देखकर उन्हें पापी तथा अपने को सर्व साधन संपन्न पाकर पुण्यात्मा न मान लें। क्या पता, समय के परिवर्तित चक्र में कल आपकी स्थिति भी वैसी हो जाये। किसी दुखी-पीड़ित जीव की सेवा करना प्रकृति या ईश्वर के नियमों का उल्लंघन नहीं है, किन्तु यही प्रकृति का नियम है कि संपन्न विपन्न की, सुखी दुखी की सेवा-सहायता करे। दुनिया एक दूसरे के पारस्परिक सहयोग से ही चल रही है। इसलिए यदि आप साधन संपन्न एवं सक्षम हैं तो जितना बन सके दुखी-पीड़ित की सेवा-सहायता करें। न सेवा-सहायता कर सकें तो

उनके लिए मन में किसी प्रकार घृणा, उपेक्षा, तिरस्कार की भावना न लायें। ऐसा करना अपने लिए दुख के बीज बोना है।

ध्यान रखें, उपासना स्थल में किसी प्रकार पूजा-पाठ, कर्मकांड कर लेना, हवन-तर्पण, जागरण कर लेना धर्म नहीं है, किन्तु धर्म है दीन-दुखी, लाचारों की सेवा-सहायता करना। इसलिए जो बन सके दूसरों की सेवा-सहायता अवश्य करें।

**3. प्रश्न**—दुख को कैसे सहें?

**उत्तर**—दुनिया में कोई भी व्यक्ति दुख नहीं चाहता, फिर भी दुनिया में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसके जीवन में कभी किसी प्रकार का दुख न आया हो। जीवन में किसी भी प्रकार का दुख आने पर उसे सहन करने का सर्वोत्तम उपाय है—चिंता-विलाप से रहित होकर धैर्यपूर्वक निर्विकार भाव से प्रसन्नतापूर्वक सहना।

सबसे पहले हमें यह समझना चाहिए कि मेरे जीवन में किसी भी प्रकार का दुख आया है वह मेरे अपने आज या कभी के किये हुए बुरे कर्मों का फल है। इसमें कोई दूसरा दोषी नहीं है किन्तु मैं स्वयं दोषी हूँ, क्योंकि यदि मैं बुरा कर्म नहीं करता तो मैं दुखी कैसे होता। किसी भी कार्य के दो प्रमुख कारण होते हैं एक निमित्त, दूसरा उपादान। इसमें उपादान प्रमुख है। जैसे किसी ने किसी को लाठी से मारा तो इसमें मारने वाला उपादान है लाठी निमित्त। क्योंकि मारने वाले का मन मारने का है तो वह लाठी न मिलने पर किसी और से मारता। दोष लाठी का नहीं मारने वाले का है। इसी प्रकार हमारे दुख में उपादान कारण हमारे बुरे कर्म हैं और निमित्त कोई व्यक्ति, प्राणी या प्राकृतिक घटना। यदि हम बुरे कार्य न किये होते तो दूसरा निमित्त क्यों बनता। यदि यह तथ्य समझ में आ जाये तो न किसी व्यक्ति या प्राणी के प्रति मन में द्वेष, रोष या वैर भाव आयेगा और न प्राकृतिक घटना होने पर चिंता-विलाप से मन पीड़ित होगा।

दुख चाहे जिस किसी माध्यम से मिला हो—है वह हमारे अपने बुरे एवं अशुभ कर्मों का ही फल-भोग। उस दुख के आने पर हमारा वह बुरे एवं अशुभ कर्मों का बोझ हलका ही हुआ यह मेरे लिए अच्छा ही हुआ।

मन में ऐसा भाव-विचार आने पर किसी भी प्रकार का दुख आने पर मन पीड़ित-व्याकुल नहीं होगा।

किसी भी प्रकार के दुख आने पर हम चाहे कितना भी रोयें-विलाप करें, चिंतित-शोकित-व्याकुल हो जायें, इससे दुख तो घटने वाला है नहीं बल्कि और बढ़ जायेगा। इसके विपरीत दुख को मेहमान समझकर प्रसन्नतापूर्वक उसका स्वागत करें और शांत रहें तो दुख स्वयमेव घटने लगेगा। सचमुच, दुख मेहमान ही है जो

हमें सीख देने के लिए आता है और कुछ दिन रहकर चला जाता है।

इसलिए दुख को धैर्य के साथ निर्विकार भाव से प्रसन्नतापूर्वक सहें, वह अपने आप मिटता चला जायेगा। हां, वर्तमान में जो कर्तव्य कर्म है उसे अवश्य करते चलें। हताश, निराश, दुखी होकर चुपचाप बैठ न जायें। फिर कोई भी दुख आपको पीड़ित नहीं कर पायेगा।

## अंधियारों से क्यों घबरायें?

रचयिता—डॉ. अमृत सिंह

अंधियारों से क्यों घबरायें;  
जहाँ तिमिर वहाँ दीप जलायें।

अंधियारे जीवन के साथी,  
धूपछाँव ज्यों आती जाती।  
साथ न देते जब उजियारे,  
साथ निभाते तब अंधियारे।  
घुटनभरा जीवन हो जिनका,  
उनका जीवन सहज बनायें।

जगमें ऐसा मिला न कोई,  
भोगा जिसने दर्द न कोई।  
जीवन में जिनके बसी निराशा,  
भरी हृदय में घोर हताशा।  
उनको बढ़कर धैर्य बंधायें।

बियाबान बीरान सफर हो,  
अंधियारी अनजान डगर हो।  
भूखा भटका थका बटोही,  
सूझे उसको राह न कोई।  
राह सही उसको दिखलाकर,  
सच्चा मानव धर्म निभायें।  
अंधियारों से क्यों घबरायें।

## जब तक जीवन है

रचयिता—श्रीमती मीना जैन

जब तक जीवन है हलचल-हलचल होगी  
जीवन न रहेगा तो ले चल, ले चल होगी  
न रहे बचपन की मुसकान, न रहेगा यौवन का उन्माद  
न रहे संबंध न संबंधी, न रहेगा मित्रों का संवाद  
जग के आँगन में होता लेकिन फिर-फिर वाद-विवाद  
आज की बात आज बीते, बीता कल-कल, कल होगी  
न रहे झुपड़ा न रहेगा आलीशान मकान  
न रहे संपदा न रहेगा बल-वैभव-सामान  
लगी रहती लेकिन फिर भी होड़ा-होड़ी, खींच-तान  
भले-बुरे कर्मों की चर्चा पल-पल-पल होगी  
न रहे रूप-सौंदर्य, न रहेगा नगर का नागर हाट  
न रहे ऐश्वर्य, न रहेगा सदा विश्वजीत सम्राट  
मरघट के आँगन में उतरेगी एक दिन खाट  
संपत्ति के बंटवारे को खलबल-खलबल होगी  
न रहे धन की धन-धन, न रहेगा जग में धनवान  
न रहे तन-कंचन न रहेगा ध्यानी-ज्ञानवान  
खोएगी महलों की रौनक, होगा पथ सुनसान  
यादों के गलियारे में अँखियाँ छल-छल-छल होंगी  
न रहो भ्रम में, न रखो मन में अभिमान-अज्ञान  
न रहे मिथ्यात्व भाव, निज आत्म रूप पहचान  
पर प्रपंच को छोड़, तू निज स्वरूप को जान  
देह दीप में आत्म-ज्योति झलमल-झलमल होगी।

## निर्ग्रन्थ मन-सुखद जीवन

लेखक—गुरुरमन दास

रस्सी में एक गांठ ऐसी लग जाती है, जिसे खोल पाना बड़ा मुश्किल होता है। अगर रस्सी के दोनों सिरों को पकड़कर खींचो तो और भी मजबूत हो जाती है। इसी प्रकार मन में भी अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि की कुछ ऐसी गांठें पड़ जाती हैं, जिन्हें जितना ही खोलने का प्रयास करते हैं, उतना ही और मजबूत होती चली जाती हैं।

हमारे मन में अहंकार रूपी खूटा इतना मजबूती से गड़ा हुआ है जो उखड़ना तो दूर हिलता भी नहीं है। पिता ने पुत्र से कुछ कहा, पुत्र ने किसी कारणवश अनसुना कर दिया, ध्यान नहीं दिया बस पिता के मन में गांठ बन गयी कि पुत्र अवहेलना कर रहा है। उसी बेटे ने पिता की न जाने कितनी बातें मानी हैं उनका ख्याल नहीं करता। इसी प्रकार पुत्र ने पिता से कुछ मांग की, पिता पूरी नहीं कर सका, बस पुत्र ने गांठ बना ली कि पिताजी मेरी बातों पर ध्यान ही नहीं देते हैं। वही पिता बच्चे की कितनी फरमाइशों को बचपन से ही पूरा करता चला आ रहा है, उन्हें बेटा भुला देता है। इस प्रकार की अविवेक, अज्ञानजनित ग्रंथियां मनुष्य को केवल पीड़ा ही देती हैं। जैसे शरीर के किसी अंग में गांठ बन जाती है तो वह गड़ती रहती है, पीड़ा देती रहती है। यदि उसे नहीं निकाला गया तो कभी-कभी नया रोग उत्पन्न कर देती है। इसी प्रकार अहंकार रूपी खूटे को यदि उखाड़कर फेंका नहीं गया तो कई मानसिक रोग जन्म ले लेंगे। हमारे शरीर की गांठ को तो कोई चिकित्सक निकाल भी सकता है परन्तु यदि हमारे मन में कोई ग्रंथि बन गयी है तो उसे कोई दूसरा नहीं निकाल सकता, उसे तो हमें ही निकालना पड़ेगा। किसी के अनुचित व्यवहार को देखकर मन में गांठ न बनाकर उसे सह लेना चाहिए। सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी कहा करते थे कि 'अपने जहर को मारना और दूसरे के उगले हुए जहर को सह लेना। यही सुख से जीने का रास्ता है।' जहर

को सह लेने वाला यानी प्रतिकूल परिस्थितियों में शांत रहने वाला आदमी ही महान होता है। देखो! सर्प दूध पीता है, परन्तु जहर उगलता है। तो सर्प को देखते ही लोग मारने दौड़ते हैं। परन्तु जहर को भी पी जाने वाले महादेव की लोग पूजा करते हैं। जहर पीने का अभिप्राय है—विषम परिस्थितियों में भी विचलित न होकर दृढ़ रहना और अपने पर आये सारे उपद्रवों को सह लेना।

दुनिया में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं हुआ, जिसकी बुराई न की गयी हो, जिसे सताया न गया हो। कितने लोग तो बिना प्रयोजन ही संत-सज्जनों को बुरा-भला कहा करते हैं, उपहास किया करते हैं। एक संत को एक आदमी ने कहा—कपटी कहीं का। संत ने मुस्कराते हुए कहा, भैया! तुमने सच ही कहा, मैं काया रूपी पट यानी शरीर ओढ़ रखा हूँ, इस शरीर को बार-बार धारण करने के कारण जन्म-मृत्यु के भवचक्र में भटक रहा हूँ, तो कपटी तो हूँ ही। एक संत बस पर चढ़ने लगे, भीड़ ज्यादा थी। एक महिला ने झुंझलाकर पीछे से पीठ पर मुक्का मारते हुए कहा—ये साधू-उपाधू कहां घुसे चले जा रहे हैं। लेकिन संत ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की और सीट पर जाकर बैठ गये। पीछे से महिला का पति आता है और संत को प्रणाम करके कहता है, गुरुजी, आप कहां जा रहे हैं? उन्होंने कहा—तुम्हारे यहां ही जा रहा था। उसने कहा—गुरुजी, जरूर चलिए। मेरा आज सौभाग्य जगा जो आपकी सेवा करने का अवसर मिलेगा। उन्होंने कहा—तुम्हारी पत्नी ने तो यहीं से स्वागत करना शुरू कर दिया है। यह सुनकर वह महिला शर्माकर क्षमा मांगने लगी। अतः जाने-अनजाने अनुकूल-प्रतिकूल व्यवहार मिलता ही रहता है। हर परिस्थिति में दृढ़ रहने की आवश्यकता है।

हम जिसे पसंद नहीं करते वह चाहे जितना निर्मल व्यक्ति क्यों न हो उसके प्रति असूया करने लगते हैं। असूया अर्थात् गुणों में भी दोष देखने की प्रवृत्ति। फिर

हमारे मन में उस व्यक्ति के प्रति ऐसी गांठ बन जाती है जिसका पिघल पाना बड़ा कठिन हो जाता है। और हम जिसे चाहते हैं, जो हमारे मन को अच्छा लगता है, वह चाहे जितना दुर्गुणी हो उसकी कमियों को देखते ही नहीं बल्कि उन्हें ढांकने का प्रयास करते हैं।

निर्ग्रन्थ मन ही सुख एवं प्रसन्नता का अनुभव कर सकता है। कुछ लोग तो हीनभावना को लेकर पीड़ित बने रहते हैं। वे अपने को इतना कमजोर एवं असहाय मान लेते हैं कि उसी हीनभावना के कारण मन में ग्रंथि बन जाती है और उनके कल्याण का रास्ता ही अवरुद्ध हो जाता है। पूर्व में हम क्या थे? कैसे थे? क्या किया? सब कुछ को भुलाकर हृदय में ज्ञान का प्रकाश करके वर्तमान में सतमार्ग पर चलने के लिए कमर कस लेना चाहिए। किसी ने कहा है—

*जब लगे कि राहें बंद सभी, कुछ पल रुक जाना बेहतर है।  
वह क्षण है अंतर यात्रा का, अंदर जाना श्रेयस्कर है।  
है मार्ग कहीं अवरुद्ध अगर, कुछ नूतन राह तलाश करो।  
बहती दरिया से कुछ सीखो, सम्यक रह सतत प्रयास करो।*

अहंकार का विसर्जन किये बिना शांति की मंजिल किसी को भी प्राप्त नहीं हो सकती। जैसे अहंकार का प्रतीक रावण कहा करता था कि मैं टूट सकता हूँ, परन्तु झुक नहीं सकता। ऐसी कठोरता का परिणाम क्या हुआ, जग विदित है। इसके विपरीत ऐसे विनम्र और दयालु लोग भी होते हैं जो दूसरों द्वारा अपने ऊपर कष्ट आने पर भी कष्ट पहुंचाने वाले के प्रति दया-क्षमा का ही व्यवहार करते हैं।

*एक तो वे लोग हैं, जो औरों की खातिर जीते हैं।  
दूसरे वे जो अपनी खातिर, औरों का खून पीते हैं।*

जब दयानंद सरस्वती को उन्हीं के भंडारी ने जहर दिया और उन्हें पता चला तो उसको क्षमादान देते हुए पैसे दिये और अन्यत्र भेज दिये। भावनगर (गुजरात) के एक राजा के सिर में पत्थर लगा। पत्थर मारने वाले को सिपाही घसीटकर सामने लाये, तो राजा ने बड़ी विनम्रता से कहा कि मुझसे क्या गलती हुई जो तुमने पत्थर मारा। उस आदमी ने कहा—मैं तीन दिनों का भूखा था,

अतः आम तोड़ने के लिए पत्थर चलाया था, वही आपको लग गया। राजा का दिल पसीज गया और उसे क्षमा करके बहुत-सा धन भी दिया। लोगों ने कहा—यह कैसा न्याय है? राजा बोला—जब एक वृक्ष को पत्थर मारा तो उसने मीठे-मीठे फल दिये, वही पत्थर मुझे लगा तो मैं इसे सजा दूँ! क्या मैं उस वृक्ष से भी गया-गुजरा हूँ। ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है।

जिनके बीच हम रात-दिन रहते हैं वहां तो बहुत ही संयत रहने की आवश्यकता है। हम जहां भी रहेंगे बिना प्रेम-समता के सुख से नहीं रह सकते। एक घर में पति-पत्नी प्रेम से रहते थे। एक दिन किसी बात को लेकर पत्नी ने झुंझलाकर पति से कहा, 'जानवर कहीं का।' पति ने मुस्कराते हुए कहा—तुमने सही कहा। देखो! तुम मेरी जान हो और मैं तुम्हारा वर। इसलिए जानवर तो हूँ ही। पत्नी बेचारी शर्म से पानी-पानी हो गयी।

मन में ग्रंथि बनने का एक कारण नकारात्मक सोच भी है। वह चाहे अपने जीवन के बारे में हो, या दूसरे के बारे में। नकारात्मक सोचने वाले व्यक्ति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। उसके जीवन में विकास के सभी स्रोत बंद हो जाते हैं। हमारी जैसी दृष्टि होती है वैसी मन की सृष्टि बन जाती है। एक जगह प्रातःकाल एकांत में एक महात्मा ध्यानमग्न बैठे थे। एक चोर निकला वह सोचता है, लगता है यह आदमी कहीं से चोरी करके आया है और माल संभाल रहा है। एक व्यभिचारी निकला। वह सोचता है लगता है कि यह आदमी किसी स्त्री की ताक में बैठा है। एक सज्जन-भक्त निकले उसने सोचा, वाह! कितने अच्छे संत हैं जो ब्रह्ममुहूर्त में ध्यान-साधना में लीन हैं। वे तीनों अपनी-अपनी सोच और दृष्टि के आधार पर आकलन कर रहे थे। इसलिए जब दृष्टि बदल जाती है तो सृष्टि भी बदल जाती है। किसी ने कहा है—'नजरें बदली तो नजारे बदल गये, किशती ने रुख बदला तो किनारे बदल गये।' सोच में परिवर्तन आने पर रत्नाकर और अंगुलिमाल जैसे डाकू भी ऋषि एवं भिक्षु हो जाते हैं। □

## मन शीतल कैसे हो?

(परमपूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 26.08.2005 को कबीर संस्थान, इलाहाबाद में दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति—रामकेश्वर)

(गतांक से आगे)

हमारे एक संत ने एक दिन मुझसे कहा कि साहेब मैं आपको कभी नहीं देखता हूँ कि किसी को आप डांटते हों। मैं वर्षों से आपके सम्पर्क में हूँ लेकिन कभी किसी को डांटते आपको नहीं देखा।

मैंने उनसे कहा कि जरूरत पड़ेगी तो आपही को डांटूंगा। एक बार उनको डांटा था तो उस बात को याद कर वे हंसने लगे। किसी को डांटने की मुझे सचमुच कभी जरूरत नहीं पड़ती। सब लोग अपने आप बढ़िया काम करते हैं तो फिर क्या डांटूँ और डांटना भी हो तो अकेले में ही डांटता हूँ। अब कहीं मुझे ही उत्तेजना हो जाये और कह दूँ सबके सामने, यह हो सकता है। नहीं तो यदि किसी की त्रुटि देखता हूँ तो अकेले में कह देता हूँ। यदि किसी ने त्रुटि की तो उनको अपने आप ग्लानि हुई होगी। उसको वे दूर कर लेते हैं। कोई बड़ी त्रुटि तो होती नहीं है। कभी बोलने-बरतने में कोई त्रुटि हो गयी तो हो गयी। उसके लिए वे खुद सोच लेंगे। अगर ज्यादा त्रुटि हो तो चाहे वह समाज का छोटा बच्चा हो या कोई बड़ा-बुजुर्ग हो उसको अकेले में ही डांटता हूँ और डांटता क्या हूँ कह देता हूँ। इसी को चाहे डांटना कहो या कहना। और आप यह भी समझ लो कि अकेले में किसी को जो भी कहो अगर वह आदमी पात्र है तो खराब नहीं पड़ता है और अगर पात्र नहीं है तो चाहे उसके पैर ही क्यों न पड़ो वह नहीं सुधरेगा। सुपात्र है तो मीठ कहो या डांट भी दो वह खराब नहीं मानेगा, मीठ ही मानेगा। कुल मिलाकर कहा जाये तो यही बात है कि डांट-फटकार बढ़िया नहीं है, मीठा वचन ही बढ़िया है।

बच्चों और शिष्यों को डांट देना अच्छा नहीं है। कितने लोग यह समझते हैं कि बच्चों से सीधे मुंह बात

ही न करें तब वे ठीक रहेंगे। कितने गुरु लोग अपने शिष्यों से एकदम गरमाये रहते हैं, मीठा वचन नहीं बोलते हैं। मैं इस पर विश्वास नहीं करता हूँ। मैं तो अपने सभी साथियों को अपना मित्र मानता हूँ। सब मेरे मित्र हैं ऐसा मैं मानता हूँ। सबको मित्र मानकर प्रेम से सबके साथ रहने की जरूरत है। कोई आगन्तुक व्यक्ति है, जैसे मान लो यहीं कोई बच्चा आ गया और उससे कुछ करते-धरते नहीं बना तो मीठे वचन में उसको कहना चाहिए। अब कहीं हम ही से कोई भूल हो गयी तो ग्लानि करनी चाहिए और फिर आगे नहीं कहना चाहिए। अगर अपनी गलती समझ में आ जाये तो वह गलती बराबर नहीं होती रहेगी। और अगर हम गलती को सही माने रहेंगे तो बराबर गलती करते रहेंगे। साधुरहनी है सज्जनों की रहनी। कोमल रहनी ही साधु रहनी है। मैंने शुरू में ही कहा था कि आपके पास सदैव रहने वाली कौन-सी वस्तु है? इसका उत्तर है—मन। देहधारियों के साथ हर समय मन है और वह मन अगर नीचे से ऊपर तक कांटेदार है तो वह हरदम चुभेगा।

हमने अपने मन को अपने कटुवचन से, गलत धारणा से, गलत बरताव से, कांटेदार बनाया है इसलिए वह हमें हरदम चुभता है। हम अपने मन को सुन्दर, शीलवान और विनम्र बनायें। घाटा हो गया, बिगड़ गया, नुकसान हो गया तो कुछ नहीं हुआ लेकिन हमारा मन यदि खराब हो गया तो सब बेकार हो गया। मान लो कोई कीमती चीज बिगड़ जाये तो चीज ही तो बिगड़ी और क्या बिगड़ी लेकिन हमारा मन यदि बिगड़ा तो बहुत बड़ा नुकसान हो गया।

चीज तो बिगड़ेगी ही, आज नहीं तो कल बिगड़ेगी। जो काम करता है उसी से बिगड़ता है। जो काम ही नहीं

करेगा उससे क्या बिगड़ेगा। इसलिए किसी बात को लेकर हमारे मन में उत्तेजना नहीं होनी चाहिए क्योंकि उत्तेजना हमारी बहुत बड़ी दुर्बलता है। उत्तेजनाशून्य जीवन, प्रतिक्रियाशून्य जीवन, रियेक्शनलेस मन शांति का सागर होता है। मन ही हमारे सामने हरदम खड़ा रहता है और मन को हमने खराब बना रखा है तब सुख हमें कैसे मिलेगा। मन को अच्छा बनायें। सब घाटा सहकर हम अपने को अच्छा बनायें। अपमान और निंदा सहकर भी हम मन को अच्छा बनायें। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

*खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराय।  
कटुक बचन साधु सहै, और से सहा न जाय।*

धरती को खोदो, गोड़ो, जोतो लेकिन धरती चुपचाप सहती है। धरती तो जड़ है लेकिन बात को समझाने के लिए कहा गया है। बात है कि सहनशीलता का आदर्श धरती है। उससे सहने का गुण सीखना चाहिए। “काटकूट बनराय”—बनराजा काट-कूट को सहता है। उसकी डाली को काटो, पत्ती को तोड़ो सबको वह सहता है। “कटुक बचन साधु सहै”—कटुक बचन तो साधु ही सहते हैं “और से सहा न जाय” और लोगों से कटुकबचन सहा नहीं जाता है। जो सहता है वही साधु है। साधु कोई वेष नहीं है। जो हम लोगों का साधुवेष है यह साधुता का लक्षण नहीं है। साधुता का लक्षण है सह लेना।

अगर यात्रा में हम हैं और हमारे पास अपरिचित लोग हैं और कहीं हम उन लोगों से गुस्सा करें तो दूसरे लोग हमें कहेंगे कि “महाराज! अरे वह कहे तो कहे, आपको नहीं कहना चाहिए। आपको सह लेना चाहिए क्योंकि आप तो संत हैं।” इस प्रकार गृहस्थ लोग भी हम लोगों को यही सीख देते हैं कि महाराज, आपको गुस्सा नहीं करना चाहिए। जो गुस्सा न करे वही संत है। कपड़ा तो थोड़े ही दिनों में पहन लेना होता है। कपड़ा पहन लेने में समय नहीं लगता है लेकिन मन को सुधारने में समय लगता है। जो सुधारने में तत्पर नहीं है उसकी जिंदगी बीत जाती है, वह नहीं सुधरता है। जिसमें तत्परता है वह सुधरता है।

जीवन को बदलो और साधु रहनी में जीवन बिताओ। साधु रहनी यानी सरल रहनी। अंदर-बाहर पवित्र रहना। महर्षि पिप्पलाद प्रश्नोपनिषद् में कहते हैं—“तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्वमनृतं न माया चेति”—निर्मल ब्रह्मलोक उसके लिए है, जिसमें कुटिलता, झूठ, छल-कपट और माया नहीं है। जिसका मन कुटिल नहीं है, टेढ़ा नहीं है, वक्र नहीं है किंतु सरल है उसी के लिए निर्मल ब्रह्मलोक है। इंसान की सबसे बड़ी विशेषता है सरलता, सत्यता और फिर निर्माया यानी छल-कपट से रहित रहना।

अपने को मांजने की जरूरत है। एक कलाकार एक अनगढ़ पत्थर को छेनी-हथौड़ी से छिन-छिनकर सुन्दर मूर्ति का रूप दे देता है और हमें तो अपने आप यह सुन्दर मानव जीवन मिला है। इसको पाकर हम इसे बिगाड़ें न और इसमें कुछ कुटेव यदि आ गया है तो उसे छील-छीलकर सुधारें। पूरे जीवन में केवल एक मन को ठीक कर लें तो सब ठीक हो जाये। साहेब ने कहा है—

*तन राता मन जात है, मन राता तन जाय।  
तन मन एकै होय रहै, तब हंस कबीर कहाय।*

“राता” का अर्थ है आसक्त होना। मन जहां आसक्त होता है वहां तन चला जाता है। शराब में जिसका मन राता है शराब की दुकान पर उसका तन चला जाता है। और जहां तन आसक्त है—इन्द्रियां आसक्त होती हैं वहां मन जायेगा।

अगर इन्द्रियां भोगों के लिए लम्पट हैं तो मन उसी तरफ बारम्बार खिंचेगा। मन जहां आसक्त है वहां तन जायेगा और तन जहां आसक्त है वहां मन जायेगा। लेकिन “तन मन एकै होय रहे”—जिसके तन और मन दोनों सम हो गये, शांत हो गये, संतुलित हो गये वह हंस है। यह बात सुनने को नहीं मिलती है, अगर मिलती भी है तो समझ में नहीं आती है और समझ में आ जाये तो रहनी में टिकने में परिश्रम लगता है।

हर रहनी का मूल्य है त्याग। जैसे क्षमा करना चाहिए तो इसके लिए क्रोध का त्याग करना पड़ेगा।

संतोष करना चाहिए तो भोग का त्याग करना पड़ेगा। निर्माण रहना चाहिए तो अभिमान का त्याग करना पड़ेगा। हर रहनी में त्याग है और त्याग भोगी मन के लिए जमालगोटा का काढ़ा है। बड़ा मुश्किल है जमालगोटा के काढ़ा को पचा ले जाना। इसी प्रकार बड़ा मुश्किल है त्याग करना। इसलिए हर मनुष्य दुखी है। अपने को संभालने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा होकर तैयार हुए बिना अपने आप को कोई उठा नहीं सकता।

जन्म-जन्म के कूड़े-कचरे मन में भरे हैं और जब से जन्म हुआ है तब से लेकर आज तक इस संसार में कूड़े-कचरे के अलावा मिला क्या है। अगर कहीं आंखें खुली हैं तो संतों, महात्माओं, पीरों, गुरुजनों के वचन से ही खुली हैं। उनके अच्छे विचार और अच्छी रहनी के प्रभाव से कुछ थोड़ा-मोड़ा मिला है। नहीं, तो इस संसार से कूड़ा-कचरा ही सर्वत्र मिलता है और वही सब मन में संग्रह होता है। उसी का संस्कार बनता है और वही कचोटता है। हरदम संग्रह और भोग इन्हीं दोनों में मनुष्य का मन लगा रहता है। कितना अधिक संग्रह करें और कितना भोग करें यही लालसा हरदम लगी रहती है।

हर जगह तृष्णा अपना घर बनाती है, विराम कहीं नहीं है। मनुष्य को चाहिए कि वह जहां कहीं भी रहे, अपनी श्रेणी में परिश्रमी रहे, आलसी न रहे और परिश्रम में जितना प्राप्त हो उतने में संतोष रखे। कहीं वह तुलना में न पड़े। वह दूसरे का मकान, दूसरे की दुकान, दूसरे के बाल-बच्चे, दूसरे की प्रतिष्ठा और दूसरे का पद इन सब की तुलना में न पड़े। जितना अपने पास है वह बहुत है। जितना है उसमें मनुष्य संतोष करे और आत्मकल्याण का काम करे। लेकिन जीवन की जो न्यूनतम आवश्यकता है उसकी पूर्ति तो होनी ही चाहिए। सूखा-रूखा कुछ खाने को तो मिलना चाहिए जो सुपाच्य, संतुलित और शुद्ध हो।

तन ढंकने के लिए कुछ कपड़े मिल जायें और सोने के लिए कुछ जगह मिल जाये बस काफी है। अब इसके आगे यदि अपने प्रारब्ध और पुरुषार्थ में ज्यादा है

तो उस ढंग से कुछ रह लो। बड़ा मकान बना लो, गाड़ी खरीद लो। रोटी-नमक से ऊपर उठकर रोटी-सब्जी खाओ। घी-दूध भी खाओ, कोई बात नहीं लेकिन संतुलित खाओ। इससे और ज्यादा हो गया है तो दूसरे की भी सेवा में लगाओ लेकिन दूसरे को देख-देखकर मन में यह सोचना कि ऐसे ही हमारे भी हो, इसमें आदमी बिलकुल भटक जाता है। अपने पास क्या है, कितने में हमारा लाभ है और कितने में हमारा काम चल जायेगा यह सोचना चाहिए।

अगर जठराग्नि को तृप्त करने के लिए सादा-गोदा कुछ मिल गया और तन ढकने के लिए कपड़े और सोने के लिए कुछ जगह मिल गयी तो बहुत है फिर और क्या चाहिए। अब अपना काम करना है और अपना जो काम है वह है मन को निर्मल करना। लेकिन यही काम करने को बचा रह जाता है। झूठे गुमान और झूठे साज-सज्जा में हम नरक बनाते चले जाते हैं। जितनी हमारी तृष्णा होगी उतना ही नरक हम बनायेंगे और जितना संतुलित हम रहेंगे उतना सुखी हम रहेंगे। अपने मन को संभालना है। कितनी ऊंची क्वालिटी की खुराक हमने खायी इसका महत्त्व नहीं है। भोजन तो जठराग्नि में हवन करना मात्र है। भोजन का महत्त्व नहीं है बल्कि मन कितना निर्मल है इसका महत्त्व है। हमारा मन यदि निर्मल है तो हम धन्य हैं और हमारा मन अगर निर्मल नहीं है तो हमारा कीमती भोजन, कीमती आवास-निवास सब बेकार है। इसलिए हमारा सारा जोर मन पर होना चाहिए।

हम बिस्तर पर जायें तो तुरन्त नींद आ जाये। ऐसा न हो कि करवट बदलते-बदलते दो घंटे बीत जाये और नींद ही न आये। ऐसा होना चाहिए कि बिस्तर पर पड़े कि नींद आ जाये। नींद से उठे तो मन में किसी के लिए तनाव न हो! सब तनाव झूठा है। बात छोटी हो या बड़ी सब तुच्छ है और सब झूठी है, क्षणिक है क्योंकि आज है और कल नहीं है। किसी की गलती को देखकर तुम तुरंत खां बन गये और वह गलती भी उसी की है कि केवल तुम्हारी कल्पना है, यह भी पता नहीं है। गलती



को देखने के गलत और सही दृष्टिकोण भी होते हैं। गलती देखने का दृष्टिकोण सही होना चाहिए। आपके साथी से कोई काम बिगड़ गया तो उसको आप गलती के रूप में देखते हैं। वही गलती जब आप करते या आप ही से जब बिगड़ जाता तब क्या होता! जो काम बनायेगा उसी से तो बिगड़ेगा। इसलिए क्यों दुखी होते हो। उसे स्नेह दो। कह दो कि कोई बात नहीं, बिगड़ गया तो बिगड़ जाने दो तुम न बिगड़ो। तुम्हारा मूल्य ज्यादा है।

एक बार मैंने अपने एक साथी को कहा कि जाओ “यह” चीज ले आओ। वह गया और लौटकर आया और बताया कि साहेब जी, बहुत मंहगी है। मैंने कहा कि क्या तुम लोगों से ज्यादा मंहगा है। तब वे हंसने लगे और फिर ले आये। हमारे साथ जो मनुष्य रहते हैं उनसे कीमती कुछ नहीं है लेकिन हम मनुष्यों का मूल्य नहीं मानते हैं। हम पैसा का मूल्य मानते हैं, चीज का मूल्य मानते हैं। जहां धन मूल्यवान हुआ वहां जन का व्यवहार खराब होगा यह पक्का समझ लो। जहां जन का मूल्य है वहां धन दूसरे नम्बर में है। धन तो जन के लिए है। कलह किसके लिए होता है, धन के लिए होता है। जन के प्रति हमारी श्रद्धा हो तो धन के लिए कलह नहीं होगा।

हमारे यहां का इतिहास है कि रामजी और भरतजी में कलह नहीं हुआ क्योंकि दोनों ने धन को प्रश्रय नहीं दिया। श्रीराम के लिए राज्य प्रस्तुत था। अगर वे अयोध्या की राजगद्दी पर बैठ जाते तो कोई उनको हटा नहीं सकता था क्योंकि पूरी सत्ता उनके साथ थी। वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि लक्ष्मणजी ने तो श्रीराम से यहां तक कहा था कि भैया, आप बैठिये गद्दी पर, मैं देखता हूं कि कौन आपके सामने आता है।

यदि राम अयोध्या की राजगद्दी पर बैठ जाते तो उनको कोई हटा नहीं सकता था। भरत तो चाहते ही थे कि राम ही अयोध्या की राजगद्दी पर बैठें। भरत को राज्य मिल गया था। वे राजगद्दी पर बैठ जाते लेकिन नहीं बैठे। राम और भरत दोनों ने धन को धन नहीं माना

किंतु जन को धन माना। राम ने भरत को धन माना और भरत ने राम को। इसलिए रामायण भातृत्व की कहानी बन गयी, भाईचारे की कहानी बन गयी। इसके उल्टा हमारा दूसरा महाकाव्य महाभारत है। हस्तिनापुर के राज्य के लिए कौरवों और पांडवों में घोर युद्ध हुआ। कौरवों और पांडवों ने धन को धन माना, जन को धन नहीं माना। इसलिए अठारह दिनों के गृहयुद्ध में सब कट कर मर गये और महाभारत भातृघातक युद्ध का काव्य बना।

वैसे महाभारत भी ज्ञान का भण्डार है लेकिन प्रपंच की बातें, अतिशयोक्तियां, झूठी बातें भी उसमें खूब हैं। प्रायः सभी धार्मिक ग्रंथों में झूठी बातें और अतिशयोक्तियां रहती ही हैं और वह किसी एक धार्मिक ग्रंथ की गलती नहीं है किंतु दुनिया के अधिकतम ग्रंथों में यही बात है। दुनिया के ग्रंथों में जो चमत्कार की बातें लिखी गयी हैं सब झूठी हैं। महाभारत में भी बहुत-सी झूठी और अतिशयोक्ति की बातें हैं लेकिन ज्ञान की बातें भी उनमें खूब हैं। उसी में गीता जैसा ज्ञान है। फिर भी महाभारत का जो सार है वह भातृघाती युद्ध है। भातृघाती युद्ध की धुरी पर ही महाभारत काव्य बना है।

कहने का मतलब है कि धन धन नहीं है बल्कि जन ही धन है। हमारे आस-पास जो आदमी रहते हैं। जिन मनुष्यों की कुण्डली में हम रात-दिन जीते हैं वे परस्पर प्रेम से रहें तो धन धन क्या है। धन तो उन्हीं के लिए है। साधुता का यही सब लक्षण हैं। साधुता या सज्जनता का लक्षण यही है कि अपने मन को वश में करो, अपनी इन्द्रियों को वश में करो, शील से, दया से और क्षमा से रहो। साधुता का यही लक्षण है कि छोटे-छोटे जीवों को भी तकलीफ मत दो। सबसे कोमल, मीठी और दीन वाणी बोलो। श्री रामरहस साहेब ने कहा है—“गुरु साधुन के आश्रिता, दीन बचन उच्चार” —गुरु-साधु के अधीन रहो और दीन वचन उच्चारण करो यानी साधु-गुरु से विनम्र रहो, अहंकार मत करो। ऐसे ही माता पिता से, बड़े-बूढ़े सबसे विनम्र होकर रहो।

यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होता है कि जिन बच्चों की टट्टी-पेशाब को माता-पिता धोते हैं, दुलराते हैं, पुचकारते हैं वे ही बच्चे जवान होकर माता-पिता से बातें नहीं करना चाहते हैं। कितने ऐसे असभ्य शिष्य भी होते हैं जो जिन गुरुजनों से सीखे-समझे हैं उन्हीं के पास नहीं बैठते हैं।

साहेब कहते हैं—“गुरु साधुन के आश्रिता, दीन वचन उच्चार”। इसी प्रकार “माता पिता के आश्रिता”—समझ लो, “वृद्धजनों के आश्रिता” समझ लो। बात एक ही है। बड़ों के आश्रय में रहो और दीन वचन बोलो। आपके वचन जब निकलें तो उनमें मिठास हो, कोमलता हो और विनम्रता हो। इसमें आप सुखी रहेंगे और दूसरा भी सुखी रहेगा। यही साधुरहनी है। साधुरहनी का मतलब है सुख से रहने की रहनी।

आज के प्रवचन का विषय था कि मन शीतल कैसे रहे। मैंने शुरू में ही आपसे कहा था कि आपके पास कौन-सी वस्तु ज्यादा रहती है और ज्यादा क्या सब समय रहती है। वह है आपका अपना मन। गाढ़ी नींद में मन बीजरूप में हो जाता है लेकिन जब बीजरूप में होता है तब भी जागृत के बीजरूप में ही रहता है। जो आपने कमाई की है सब उसमें बन्द रहती है। जैसे आपकी नींद खुली वैसे सब आ जायेगा।

जो कुछ आप करते हैं उसकी कमाई का आपके मन में स्टाक है और जैसे नींद खुलेगी वैसे वह स्टाक सामने आ जायेगा। इसलिए हमें और आपको चाहिए कि सब घाटा, सब निरादर और सब तकलीफ सहकर, चारों तरफ से सारा झंझा सहकर अपने मन को सुन्दर बनायें। अपने मन को निर्मल बनायें। जो अपने मन को निरन्तर प्रयत्नपूर्वक निर्मल बनाने का काम करता है उसका मन थोड़े ही दिनों में समाधि के योग्य हो जाता है। निर्मल मन ही समाधि में प्रवेश करता है। अगर मन निर्मल है तो वह सब समय समाधि में ही है। वह जब समाधि में जाता है तब संकल्परहित हो जाता है लेकिन बाकी समय में भी संतुलित होने से समाधि में ही है।

जिसके मन में उत्तेजना नहीं है वह सब समय समाधि में ही है। चित्त का उद्वेगशून्य होना जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है। यह हमें और आपको ही करना होगा। कोई दूसरा इसको कर नहीं देगा। न कोई भगवान कर देगा और न कोई साधु-गुरु ही कर देंगे। साधु-गुरु तो उपदेश करेंगे, रास्ता बतायेंगे और यह उनकी महती कृपा है। जिनकी वाणी और जिनके उत्तम चरित्र से आप प्रेरित हो सकते हैं क्या उनका उपकार कम है, कम नहीं है। वे उपदेश देते हैं और अब आगे का काम आपको करना है। आप अपने को संभालें।

दूसरा कोई भी दूसरे के चित्त को शुद्ध नहीं कर सकता। स्वयं करना पड़ेगा। इसलिए इस बात को हमें गांठ बांध लेना चाहिए कि हमारा मन ही हमेशा हमारे अंग-संग है। मन को हम अच्छा रखें तो सब समय हम सुखी रहेंगे और अगर हम दुनिया के प्रपंच में जो सपने की तरह आज है और कल नहीं है, अपने को डालकर उसी के अहंकार में पड़कर अपने मन को खराब बना लिये तो आज जलते रहेंगे और आगे भी जलते रहेंगे।

अतः हम ऐसा काम न करें जिससे आज जलें और आगे भी जलें। हम ऐसा काम करें कि जिससे आज शीतल रहें और आगे भी शीतल रहें। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ। □

- ❖ संयम और सदाचार सबसे बड़ा धर्म है।
- ❖ अपनी वाणी की अपेक्षा अपने कर्मों को बोलने दें।
- ❖ संकट के समय न घबड़ाना, अपितु धैर्य रखना मानो आधी लड़ाई को जीत लेना है।
- ❖ संभावना को खत्म मत होने दो, किन्तु उसे यथार्थता में बदलने का प्रयास करो।
- ❖ मनुष्य का पतन किसी दूसरे के कारण नहीं, किन्तु उसकी अपनी दुर्बलताओं के कारण होता है।
- ❖ बड़ा से बड़ा गुण अभिमान आने पर दुर्गुण में बदल जाता है। अतः गुणों का भी अभिमान न करें।